KGS IAS

# भारतीय राज्यव्यवस्था

KHAN GLOBAL STUDIES
Most Trusted Learning Platform

KGS IAS

# Test Series

## UPSC Prelims 2024

Offline | Online

- Detailed Solutions for all Questions (PDF)
- Time - Bound, Disciplined, & Result-Oriented Tests
- Holistic Coverage of all Study Materials & Sources
- Pattern and Trend Based on UPSC CSE Prelims Exam
- Fundamental and Comprehensive Test

Scan to Know More

KHAN GLOBAL STUDIES
Most Trusted Learning Platform

# विषय सूची


| | |
|---|---|
| संविधान एवं शासन प्रणाली | 1 |
| भारत में संवैधानिक विकास एवं भारतीय संविधान | 16 |
| संविधान की प्रस्तावना | 27 |
| संघ और उसका राज्यक्षेत्र | 30 |
| नागरिकता | 34 |
| मूल अधिकार | 42 |
| राज्य के नीति निदेशक तत्व | 58 |
| मूल कर्तव्य | 64 |
| संघीय कार्यपालिका | 66 |
| संघीय विधायिका | 83 |
| उच्चतम न्यायालय | 109 |
| राज्य कार्यपालिका | 124 |
| राज्य विधानमंडल | 137 |
| जम्मू एवं कश्मीर | 145 |
| संघ-शासित प्रदेश | 150 |
| उच्च न्यायालय | 154 |
| स्थानीय प्रशासन | 162 |
| केन्द्र-राज्य संबंध | 176 |
| आपातकालीन प्रावधान | 185 |
| लोक सेवाएँ | 190 |
| निर्वाचन, राजनीतिक दल व दबाव समूह | 193 |
| विशेष वर्गों के लिए उपबंध | 199 |
| राजभाषा | 201 |
| संविधान संशोधन | 203 |
| संविधान की अनुसूचियाँ | 209 |
| संवैधानिक एवं गैर-संवैधानिक निकाय | 211 |


Most Trusted Learning Platform
KHAN SIR

# संविधान एवं शासन प्रणाली
# (Constitution & System of Governance)

## संविधान का अर्थ (Meaning of Constitution)

ऐतिहासिक रूप से देखा जाए तो जब से राज्य का उद्भव हुआ है तभी से राज्य व जनता के आपसी रिश्तों को संचालित करने के लिए कुछ नियमों को लिखित अथवा अलिखित रूप में स्वीकार किया गया। इसे संविधान का प्राचीनतम रूप माना जा सकता है।

आधुनिक संदर्भ में संविधान किसी भी देश की सर्वोच्च मौलिक विधि होती है। संविधान का तात्पर्य उस लेखपत्र (Document) या दस्तावेज़ से है, जिसको एक विशिष्ट वैधानिक गरिमा प्राप्त होती है और जो सरकार की रूपरेखा व प्रमुख कृत्यों (Functioning) का निर्धारण करता है।

संविधान का आशय विभिन्न विद्वानों द्वारा निम्नानुसार है:–

- ***डायसी के अनुसार***– 'संविधान उन समस्त नियमों का संग्रह है जिनका राज्य की प्रभुत्व सत्ता के प्रयोग अथवा वितरण पर प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष प्रभाव पड़ता है।'
- ***बूल्जे के अनुसार***– 'संविधान नियमों के उस समूह को कहते हैं जिसके अनुसार, सरकार की शक्तियों, शासितों के अधिकारों और इन दोनों के पारस्परिक संबंधों के विषय में सामंजस्य स्थापित किया जाता है।'
- ***फाइनर के अनुसार***– 'संविधान आधारभूत राजनीतिक संस्थाओं की व्यवस्था होती है।'
- ***गैटिल के अनुसार***– 'वे मौलिक सिद्धांत, जिनके द्वारा किसी राज्य का स्वरूप निर्धारित होता है संविधान कहलाता है'।
- ***चार्ल्स बर्गेन्ड के अनुसार***– 'संविधान एक आधारभूत कानून होता है, जिसके द्वारा किसी राज्य की सरकार संगठित की जाती है और जिसके अनुसार व्यक्तियों अथवा नैतिक नियमों का पालन करने वाले मनुष्य तथा समाज के पारस्परिक संबंध निर्धारित किये जाते हैं।'

किसी देश का संविधान उस देश की राजनीतिक व्यवस्था, जिसके अन्तर्गत उसके लोग शासित होते हैं, के मूलभूत ढाँचे को स्पष्ट करता है। यह राज्य के मुख्य अंगों की शक्तियों को परिभाषित करता है, उनके उत्तरदायित्वों का निर्धारण करता है और उनके पारस्परिक संबंधों तथा जनता के साथ संबंधों को विनियमित (Regulate) करता है। इसे देश की 'आधारभूत विधि' (Fundamental Law) भी कहा जा सकता है, जो जनता के विश्वास व उनकी आकांक्षाओं को प्रतिबिम्बित करता है।

संविधान का निर्माण पूर्णत: किसी एक निश्चित समय में नहीं हुआ। यह अपनी प्रकृति से विकास का परिणाम है। इसके विकास में कई महत्वपूर्ण तत्व सहायक होते हैं, जैसे–

- ***प्रथाएँ और परंपराएँ***– इन्होंने संविधान के विकास को दिशा दी है। ग्रेट ब्रिटेन का संविधान तो अधिकांशत: प्रथाओं और परंपराओं से निर्मित है। इसके अलावा अन्य देशों के संविधानों जैसे संयुक्त राज्य अमेरिका, भारत इत्यादि पर भी प्रथाओं और परंपराओं का प्रभाव देखा जा सकता है।
- ***न्यायाधीशों के निर्णय***– न्यायाधीशों द्वारा दिए गए निर्णयों और व्याख्याओं से भी संविधान के विकास को गति मिलती है। भारत और संयुक्त राज्य अमेरिका के संविधान में इसे देखा जा सकता है। अमेरिका के विषय में कहा जाता है कि, 'संविधान वही है जो न्यायाधीश कहते हैं।' संशोधनों द्वारा भी संविधान परिवर्तित और परिवर्धित होते रहते हैं। अत: इनका भी संविधान के विकास पर प्रभाव देखा जा सकता है।

## संविधान का महत्व (Importance of Constitution)

चूँकि संविधान किसी देश की मौलिक विधि होती है इसलिए इसका महत्व देश, सरकार, नागरिकों पर पड़ने वाले प्रभाव के रूप में निम्नलिखित बिंदुओं से समझा जा सकता है:–

- संविधान बुनियादी नियमों का एक ऐसा समूह उपलब्ध कराता है, जिससे समाज के सदस्यों में एक न्यूनतम समन्वय और विश्वास बना रहे।
- संविधान यह स्पष्ट करता है कि, समाज में निर्णय लेने की शक्ति किसके पास होगी? साथ ही संविधान यह भी निश्चित करता है कि सरकार कैसे निर्मित होगी?
- संविधान सरकार द्वारा अपने नागरिकों पर लागू किये जाने वाले कानूनों की एक सीमा तय करता है। ये सीमाएँ इस रूप में मौलिक होती हैं कि सरकार कभी इनका उल्लंघन नहीं कर सकती।
- संविधान सरकार को ऐसी क्षमता प्रदान करता है, जिससे वह जनता की आकांक्षाओं को पूरा कर सके और एक न्यायपूर्ण समाज की स्थापना के लिए उचित परिस्थितियों का निर्माण कर सके।
- संविधान किसी समाज व राष्ट्र की आधारभूत पहचान को निर्मित करता है।

संविधान सरकार की शक्तियों को कई तरह से सीमित करता है। सरकार की शक्तियों को सीमित करने का सबसे प्रभावी व सहज तरीका यह है कि, नागरिक के रूप में हमारे मौलिक अधिकारों को स्पष्ट कर दिया जाए और कोई भी सरकार कभी भी उनका उल्लंघन न कर सके। इन अधिकारों का वास्तविक स्वरूप और व्याख्याएँ भिन्न-भिन्न संविधानों में बदलती रहती हैं, लेकिन अधिकतर संविधानों में कुछ विशेष मौलिक अधिकार सदैव पाए जाते हैं। नागरिकों को मनमाने ढंग से बिना किसी कारण के गिरफ्तार करने के विरुद्ध सुरक्षा प्राप्त होती है। यह सरकार की शक्तियों के ऊपर एक मूलभूत सीमा है। नागरिकों को सामान्यत: कुछ मौलिक स्वतंत्रताओं का अधिकार है, जैसे–भाषण की स्वतंत्रता, विचार एवं अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता, संगठन बनाने की स्वतंत्रता आदि। इसी प्रकार संविधान, सरकार को शक्तियाँ भी प्रदान करता है, जिससे लोकहित में सरकार आवश्यक कदम उठा सके तथा राष्ट्र, समाज और नागरिकों की सुरक्षा कर सके जैसे– इन अधिकारों को राष्ट्रीय आपातकाल में सीमित किया जा सकता है। संविधान उन परिस्थितियों का उल्लेख भी करता है, जिनमें इन अधिकारों को वापस लिया जा सकता है।

संविधान के माध्यम से ही किसी समाज की एक सामूहिक इकाई के रूप में पहचान होती है। इस सामूहिक पहचान को बनाने के लिए हमें इस संबंध में कुछ बुनियादी नियमों पर सहमत होना पड़ता है कि हम पर शासन कैसे होगा और शासितों में कौन-कौन से लोग होंगे? संविधान बनने के पहले हमारी अनेक प्रकार की पहचान या अस्मिताएँ होती हैं, लेकिन कुछ बुनियादी नियमों और सिद्धांतों पर सहमत होकर हम अपनी मूलभूत राजनीतिक पहचान बनाते हैं। संवैधानिक नियम हमें एक ऐसा व्यवस्थित ढाँचा प्रदान करते हैं, जिसके अंतर्गत हम अपनी व्यक्तिगत आकांक्षाओं, लक्ष्य और स्वतंत्रताओं का प्रयोग करते हैं। संविधान आधिकारिक बंधन लगा कर यह तय कर देता है कि कोई क्या कर सकता है और क्या नहीं? इस रूप में संविधान हमें एक नैतिक पहचान भी देता है। इसलिए यह संभव हो सका है कि अनेक बुनियादी राजनीतिक और नैतिक नियम विश्व के सभी प्रकार के संविधानों में स्वीकार किये गये हैं।

## *संविधानवाद (Constitutionalism)*

संविधानवाद का सामान्य अर्थ यह है कि, सरकार की सत्ता संविधान से उत्पन्न होती है तथा इसी से उसकी सीमा भी तय होती है। संविधानवाद सरकार के उस स्वरूप को कहते हैं, जिसमें संविधान की प्रमुख भूमिका होती है। अधिकारियों को मनमाने निर्णय की छूट न होने तथा 'कानून के राज्य' का पक्ष लेना ही संविधानवाद है। संविधानवाद की मूल भावना यह है कि, सरकारी अधिकारी कुछ भी और किसी भी तरीके से कार्य करने के लिए स्वतंत्र नहीं होते हैं बल्कि उन्हें अपनी शक्ति की सीमाओं के अंदर रहते हुए ही कार्य करने की आजादी होती है और वह भी संविधान में वर्णित प्रक्रिया के अनुसार,

संविधानवाद पर विभिन्न विद्वानों ने अपने-अपने विचार व्यक्त किये हैं-

- ***पिनॉक व स्मिथ***- 'संविधानवाद उन विचारों की ओर संकेत करता है जो संविधान का विवेचन व समर्थन करते हैं तथा जिनके माध्यम से राजनीतिक शक्ति पर प्रभावी नियंत्रण स्थापित करना संभव होता है।'
- ***कार्ल. जे. फ्रेडरिक***- 'शक्तियों का विभाजन सभ्य सरकार का आधार है, यही संविधानवाद है।'
- ***कॉरी और अब्राहम***- 'स्थापित संविधान के निर्देशों के अनुरूप शासन को संविधानवाद कहते हैं।'
- ***के.सी. व्हीयर***- 'संवैधानिक शासन का अर्थ किसी शासन के नियमों के अनुसार शासन चलाने से अधिक कुछ नहीं है। इसका अर्थ है कि निरंकुश शासन के विपरीत नियमानुकूल शासन केवल अधिकार का उपयोग करने वालों की इच्छा और क्षमता के अनुसार चलने वाला शासन नहीं बल्कि संविधान के नियमों के अनुसार चलने वाला शासन होता है।

### *संविधानवाद की अवधारणाएँ*

संविधानवाद की तीन प्रचलित अवधारणाएँ हैं:-

1. ***पाश्चात्य अवधारणा***- इसे उदारवादी लोकतांत्रिक अवधारणा भी कहा जाता है। यह 'राज्य व व्यक्ति' के बीच समन्वयात्मक व सहजीवी दृष्टिकोण को स्वीकार करता है। इसमें व्यक्तिगत स्वच्छन्दता व राज्य-निरंकुशता दोनों को अस्वीकार किया गया है। यह अपने लक्ष्य की प्राप्ति के लिए विभिन्न साधनों यथा सीमित व उत्तरदायी सरकार, विधि का शासन, मौलिक अधिकारों की व्यवस्था, स्वतंत्र और निष्पक्ष न्यायपालिका, शक्ति पृथक्करण और शक्ति विभाजन, नियत-कालिक व नियमित निर्वाचन व्यवस्था, राजनीतिक दलों की उपस्थिति, प्रेस की स्वतंत्रता इत्यादि का प्रयोग करती है।
2. ***साम्यवादी अवधारणा***- साम्यवाद यह मानता है कि संपूर्ण व्यवस्था के मूल में आर्थिक घटक कार्य करता है जिसका तात्पर्य उत्पादन प्रणाली से है। इसमें दो घटक होते हैं- एक उत्पादन साधन और दूसरा उत्पादन संबंध। जिस वर्ग के पास उत्पादन के साधन होते हैं वही शासन करता है। सामाजिक, राजनैतिक सभी व्यवस्थाएँ उसी के अनुरूप चलती हैं। यह राज्य को कृत्रिम संगठन और शोषण का यंत्र मानता है। इसी परिप्रेक्ष्य में वह व्यक्ति की स्वतंत्रता बचाने तथा उसे सामाजिक व आर्थिक न्याय कैसे दिलाया जाए, इसी लक्ष्य की पूर्ति के लिए निम्नलिखित बातों पर ज़ोर देता है- (a) वर्ग-विहीन तथा राज्य-विहीन समाज की स्थापना जिससे शोषण समाप्त किया जा सके। (b) उत्पादन के साधनों पर समाज पर नियंत्रण ताकि प्रत्येक से उसकी क्षमता के अनुसार काम और प्रत्येक को उसकी आवश्यकता के अनुसार पारितोषिक प्रदान किया जा सके। (c) संपत्ति के वितरण से समाज में समानता लायी जा सके। (d) मानव को यंत्र न मानकर मानव माना जाए, जिससे मानवीय पराधीनता के प्रत्येक स्वरूप को समाप्त किया जा सके। इस प्रकार यह मानव कल्याण की बात करता है।
3. ***विकासशील लोकतांत्रिक अवधारणा***- वास्तव में संविधानवाद की दो ही मौलिक अवधारणाएँ हैं। तीसरी अवधारणा कुछ विद्वान विकासशील देशों द्वारा अपनी आवश्यकता के अनुरूप उपरोक्त दोनों अवधारणाओं के विभिन्न तत्वों के सम्मिश्रण से उत्पन्न मानते हैं। यह अवधारणा राष्ट्रों द्वारा अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति का लचीलापन दर्शाती है।

इस प्रकार, संविधानवाद मूल रूप से शासन व्यवस्था के नियमों, संचालन, लक्ष्य, आदर्श इत्यादि का प्रतिनिधित्व करता है।

## *संविधान के प्रकार (Types of Constitution)*

दुनिया के सभी संविधानों में भले ही भावात्मक समानता हो, परन्तु इनका विकास उनके सांस्कृतिक संदर्भों में होने के कारण अलग-अलग देशों में संविधान के प्रारूपों में भिन्नता दिखाई देती है। अपनी प्रकृति, प्रारूप एवं अन्तर्निहित विशेषताओं के आधार पर संविधान के निम्नलिखित मुख्य प्रकार हो सकते हैं-

### *उत्पत्ति के आधार पर*

उत्पत्ति के आधार पर संविधान दो प्रकार के होते हैं- विकसित और निर्मित संविधान। विकसित संविधान वह संविधान है, जिनका निर्माण संविधान सभा जैसी किसी संस्था द्वारा निश्चित समय पर नहीं किया जाता बल्कि यह विभिन्न परंपराओं, रीति-रिवाजों, प्रथाओं और न्यायालयों के निर्णयों पर आधारित होता है। इंग्लैण्ड का संविधान इसका श्रेष्ठ उदाहरण है। यहाँ राजा, मंत्रिपरिषद, संसद अथवा अन्य राजनैतिक संस्थाओं की शक्ति और उसके अधिकार क्षेत्र आदि लेखबद्ध नहीं हैं तथा न ही उनसे संबंधित नियमों का एक समय निर्माण किया गया है। वस्तुत: ब्रिटिश संविधान का वर्तमान स्वरूप उसके पंद्रह सौ वर्षों के संवैधानिक विकास का परिणाम है।

निर्मित संविधान वे संविधान होते हैं जिनका निर्माण एक विशेष समय पर संविधान सभा जैसी किसी विशेष संस्था द्वारा किया जाता है। ये स्वाभाविक रूप से लिखित होते हैं और साधारणतया कठोर भी। 'अमेरिका' का संविधान विश्व का प्रथम लिखित संविधान है जो 1787 ई. में फिलाडेल्फिया सम्मेलन में निर्मित किया गया। इसी प्रकार स्विट्जरलैंड का संविधान भी निर्मित है, जिसका प्रारूप 1848 में 14 सदस्यों के एक आयोग द्वारा तैयार किया गया था, जिसमें 1874 में व्यापक परिवर्तन किये गये। 1982 का चीनी संविधान भी इसी का उदाहरण है।

### *विकसित संविधान और निर्मित संविधान में मौलिक अंतर*

- विकसित संविधान में गतिशीलता होती है, यह लोगों की आवश्यकताओं और आकांक्षाओं के अनुरूप सदा परिवर्तन की प्रक्रिया में रहता है, परंतु इसका दोष है कि, इसमें निश्चितता नहीं होती है तथा यह असंख्य अलग-अलग व बिखरे हुए प्रपत्रों और राजनीतिक रीति-रिवाजों के रूप में रहता है।
- वहीं निर्मित संविधान सर्वथा सुनिश्चित होता है, संहिताबद्ध रूप में होने के कारण यह सदा सुविधायुक्त होता है।

### *प्रथाओं और कानूनों के आधार पर*

**इनके आधार पर संविधान दो प्रकार के होते हैं- लिखित एवं अलिखित संविधान-**

1. लिखित संविधान में शासन के सभी नियमों एवं मानकों का संहिताकरण होता है। इसके अलावा लिखित संविधान इसी कार्य के लिए बनाये गये निकाय द्वारा तैयार किया जाता है, जैसे भारत में इस कार्य के लिए संविधान सभा संगठित की गयी थी। लिखित संविधान के लागू होने की एक निश्चित तिथि होती है, जैसे भारतीय संविधान के लिए 26 जनवरी, 1950 या अमेरिकी संविधान 1787 को लागू हुआ था। विश्व के अधिकांश संविधान लिखित संविधान ही हैं।

2. अलिखित संविधान से अभिप्राय यह नहीं होता है कि वह कहीं पर लिखा हुआ नहीं है, बल्कि अलिखित संविधान के प्रावधान उद्विकासीय होते हैं अर्थात् धीरे-धीरे विकसित होता है। अलिखित संविधान होने का अर्थ सिर्फ इतना है कि ऐसे देशों में संविधान नामक कोई एक वृहद् कानूनी दस्तावेज़ नहीं होता, बल्कि विभिन्न कानूनों, परंपराओं तथा कानूनी व्याख्याओं के समुच्चय को ही संविधान कह दिया जाता है, यथा ब्रिटेन का संविधान अलिखित संविधान है जिसका धीरे-धीरे विकास हुआ है।

### *संविधान में संशोधन के आधार पर*

इस आधार पर संविधान के दो भेद होते हैं- लचीला तथा कठोर संविधान।

1. लचीला संविधान वह संविधान है जिसमें सामान्य कानून और संवैधानिक कानून के निर्माण और संशोधन प्रक्रिया में अंतर न हो। 'गार्नर' के अनुसार, 'लचीला संविधान वह है जिसको साधारण कानून से अधिक शक्ति एवं सत्ता प्राप्त नहीं है और जो साधारण कानून की भाँति ही बदला जा सकता है, चाहे वह एक प्रलेख या अधिकांशत: परंपराओं के रूप में हो'। जैसे इंग्लैंड में संसद सामान्य नियम निर्माण की प्रक्रिया द्वारा संवैधानिक कानूनों में परिवर्तन कर सकती है। इसी प्रकार चीन का संविधान भी साधारण कानून निर्माण की प्रक्रिया द्वारा संशोधित किया जा सकता है।
2. कठोर संविधान से अभिप्राय, उस संविधान से है जिसमें संशोधन के लिए किसी विशेष प्रक्रिया अपनाई जाती है। इसमें साधारण कानून और संवैधानिक कानून में भेद किया जाता है। कठोर संविधान के उदाहरण, स्विट्जरलैंड, ऑस्ट्रेलिया, रूस, इटली, फ्रांस, डेनमार्क, स्वीडन, नॉर्वे, जापान तथा भारत के संविधान है। परंतु इसका सर्वोत्तम उदाहरण संयुक्त राज्य अमेरिका का संविधान है, जहाँ संशोधन के लिए कांग्रेस के 2/3 बहुमत तथा 3/4 राज्यों के विधानमंडलों की स्वीकृति आवश्यक है। इसी प्रकार स्विस प्रक्रिया में यह व्यवस्थापिका (संघीय सभा) के दोनों सदनों के बहुमत द्वारा पास होना चाहिए तथा इसके बाद उसका समर्थन मतदाताओं और केन्टनों (राज्य) के बहुमत से होना चाहिए।

## *शासन प्रणाली (System of Governance)*

सभी मानवीय समुदायों ने सामाजिक संबंधों के संयोजन, संघर्षों की रोकथाम और समाधान तथा समाज के समान उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए कोई न कोई नियंत्रण व्यवस्था अपना रखा है। सत्ता और नियंत्रण की इस व्यवस्था को सरकार (शासन) कहा जाता है। मूलत: सरकार (शासन) के तीन कार्य होते हैं, पहला- कानून बनाना, दूसरा- कानून लागू करना और तीसरा- विवादों को सुलझाना। इन कार्यों को पूरा करने वाले सरकार के तीन अंग होते हैं- विधायिका, कार्यपालिका व न्यायपालिका। विधानमंडल व कार्यपालिका के पारस्परिक संबंधों के आधार पर सरकारों का वर्गीकरण करने पर दो प्रकार की सरकारें होती हैं-1. संसदीय सरकार 2. अध्यक्षीय सरकार।

### *संसदीय सरकार*

जिस शासन व्यवस्था में कार्यपालिका का जन्म व्यवस्थापिका में से होता है और कार्यपालिका, विधानमंडल के नियंत्रण में कार्य करती है एवं पूर्ण रूप से उसके प्रति ही उत्तरदायी होती है तो ऐसी सरकार (शासन व्यवस्था) को संसदीय सरकार या मंत्रिमंडलीय शासन या उत्तरदायी शासन कहते हैं।

### *अध्यक्षीय सरकार*

यदि विधानमंडल और कार्यपालिका एक-दूसरे से पृथक व स्वतंत्र होकर कार्य करते हैं और दोनों समकक्ष दर्जे के होते हैं, दूसरे शब्दों में ये दोनों शक्ति पृथक्करण के सिद्धांत के आधार पर काम करते हैं, तो ऐसी सरकार को अध्यक्षात्मक सरकार कहते हैं। इसी प्रकार राज्यों के आकार और उनकी समस्याओं, उनके गठन इत्यादि के कारण उनकी व्यवस्था में भी संघात्मक और एकात्मक लक्षणों की उपस्थिति होती है, जिसके आधार पर एकात्मक या संघात्मक शासन प्रणाली का स्वरूप पाया जाता है।

## *संसदात्मक शासन प्रणाली (Parliamentary form of Government)*

संसदात्मक/संसदीय शासन प्रणाली में कार्यपालिका शक्तियां मंत्रिपरिषद के हाथों में रहती हैं और यह कार्यपालिका (मंत्रिपरिषद या मंत्रिमंडल), व्यवस्थापिका या उसके निचले सदन के प्रति उत्तरदायी होती है। इस प्रणाली में राज्याध्यक्ष नाममात्र का शासक या प्रधान होता है।

प्रो. गार्नर ने संसदात्मक या मंत्रिमंडलीय सरकार को परिभाषित करते हुए लिखा है कि, "संसदीय सरकार वह प्रणाली है, जिसमें वास्तविक कार्यपालिका (मंत्रिपरिषद) अपने विधायी और प्रशासनिक कार्यों के लिए प्रत्यक्ष और कानूनी तौर पर विधानमंडल अथवा उसके एक सदन (प्राय: लोकप्रिय सदन) के प्रति और राजनीतिक तौर पर निर्वाचक गणों के प्रति उत्तरदायी होती है, जबकि नाममात्र की कार्यपालिका (राज्य का प्रधान) अनुत्तरदायी स्थिति में होती है।"

### *संसदात्मक/संसदीय शासन प्रणाली की विशेषताएँ*

**संसदीय शासन प्रणाली की प्रमुख विशेषताएँ निम्नलिखित हैं-**

- ***वास्तविक और नाममात्र की कार्यपालिका में भेद***- संसदीय प्रणाली में दो प्रकार की कार्यपालिकाएँ होती हैं-पहली, नाममात्र की कार्यपालिका और दूसरी, वास्तविक कार्यपालिका। राज्य का प्रधान, नाममात्र की कार्यपालिका और प्रधानमंत्री सहित मंत्रिपरिषद वास्तविक कार्यपालिका होती है। ब्रिटेन में वर्तमान समय में रानी और भारत में राष्ट्रपति नाममात्र के प्रधान ही हैं।
- ***कार्यपालिका और व्यवस्थापिका में अभिन्न संबंध***- संसदीय शासन में कार्यपालिका और व्यवस्थापिका में अभिन्न संबंध होता है। कार्यपालिका का व्यवस्थापिका में से चयन होता है। मंत्रीगण व्यवस्थापिका के सदस्य होते हैं, वे व्यक्तिगत और सामूहिक रूप से व्यवस्थापिका के प्रति उत्तरदायी होते हैं। व्यवस्थापिका वाद-विवाद, प्रश्न पूछकर, काम रोको प्रस्ताव, अविश्वास प्रस्ताव आदि के द्वारा मंत्रिपरिषद को नियंत्रित करती है और हटा भी सकती है। दूसरी ओर कार्यपालिका के सदस्य अर्थात् मंत्री व्यवस्थापिका की कार्यवाहियों में भाग लेते हैं, व्यवस्थापिका का नेतृत्व करते हैं।
- ***राज्य के अध्यक्ष द्वारा सरकार के अध्यक्ष की नियुक्ति***- राज्य के अध्यक्ष द्वारा सरकार के अध्यक्ष (प्रधानमंत्री) की नियुक्ति की जाती है। यह नियुक्ति लोकसदन में बहुमत प्राप्त दल के नेता की होती है।
- ***कार्यपालिका की अवधि की अनिश्चितता***- इस शासन में मंत्रिपरिषद का कार्यकाल निश्चित नहीं होता है, मंत्रिपरिषद उसी समय तक रह सकती है, जब तक कि उसे निचले सदन में बहुमत का समर्थन प्राप्त होता है।
- ***सामूहिक उत्तरदायित्व***- इसका अर्थ यह है कि, किसी एक मंत्री के कार्य के लिए अकेला वही उत्तरदायी नहीं,वरन समस्त मंत्रिपरिषद उत्तरदायी होती है। कारण यह है कि मंत्रिपरिषद में निर्णय सामूहिक रूप से ही होते हैं।
- ***राजनीतिक सजातीयता***- मंत्रिपरिषद की सजातीयता उसकी एकता व सामूहिक उत्तरदायित्व की दृष्टि से आवश्यक है। गंभीर संकट के समय अन्य दल के लोगों को लेकर राष्ट्रीय सरकार बनायी जा सकती है।
- ***मंत्रिमंडल की एकता***- मंत्रिमंडल एक इकाई है, इसलिए मंत्रिमंडल में जो निर्णय बहुमत से हो जाते हैं, उन्हें प्रत्येक मंत्री को स्वीकार करना पड़ता है या उन्हें मंत्री पद से त्यागपत्र देना पड़ता है।
- ***प्रधानमंत्री का नेतृत्व***- संसदीय सरकार में प्रधानमंत्री का विशिष्ट स्थान होता

है। वह मंत्रिपरिषद का नेता व उसका कप्तान होता है। वह राष्ट्रीय प्रशासन का संचालक होता है तथा मंत्रियों की नियुक्ति व निष्कासन करता है। लॉर्ड मार्ले ने ब्रिटिश प्रधानमंत्री को 'मंत्रिमंडल रूपी भवन की आधाशिला' कहा है।

- ***गोपनीयता***– मंत्रिमंडल की कार्यवाही गुप्त रहती है। सभी मंत्री गोपनीयता की शपथ ग्रहण करते हैं। मंत्रिगण मंत्रिमंडल के निर्णयों को या मतभेदों को संसद में या सार्वजनिक रूप से प्रकट नहीं कर सकते। मंत्री उचित समय पर ही कैबिनेट के निर्णयों को जनता तक पहुँचाते हैं।

### *संसदात्मक/संसदीय शासन प्रणाली के गुण*

**संसदात्मक शासन प्रणाली के प्रमुख गुण निम्नलिखित हैं**–

- ***कार्यपालिका और व्यवस्थापिका के बीच संघर्ष का अभाव***– संसदीय शासन प्रणाली का एक गुण यह है कि व्यवस्थापिका (संसद) और कार्यपालिका में मतैक्य रहता है, संघर्ष नहीं। दोनों अंग एक–दूसरे की आवश्यकता और उपादेयता को समझते हैं, मंत्री व्यवस्थापिका में बैठते हैं, इच्छानुसार विधेयक व बजट आदि पारित कराते हैं और संसद के प्रति अपने उत्तरदायित्व का पालन करते हैं।
- ***शीघ्र निर्णय***– शक्तियाँ मंत्रिमंडल में निहित होती हैं, जिसका संसद में बहुमत होता है। अत: वह शीघ्र निर्णय लेने में सक्षम हो जाता है।
- ***कार्यपालिका निरंकुश नहीं हो सकती***– यह सरकार उत्तरदायी सरकार है, जिसमें संसद मंत्रिपरिषद से प्रश्न व पूरक प्रश्न पूछकर, काम रोको प्रस्ताव व अविश्वास प्रस्ताव द्वारा उसे नियंत्रित करती है।
- ***उत्तरदायित्व का निर्धारण सरलता से***– संसदीय शासन में उत्तरदायित्व का निर्धारण भी सरलता से हो जाता है, क्योंकि विधि निर्माण व प्रशासन का कार्य एक ही दल के हाथों में रहता है।
- ***लचीली व्यवस्था***– प्रो. डायसी के अनुसार, लचीलापन संसदीय शासन का महत्वपूर्ण गुण है। यह शासन नयी परिस्थितियों व संकटकाल का सामना कुशलता से कर सकता है। यह उल्लेखनीय है कि द्वितीय विश्व युद्ध के दौरान ब्रिटेन में चेम्बरलेन के स्थान पर चर्चिल को प्रधानमंत्री बनाया गया था, ऐसा परिवर्तन अध्यक्षीय शासन में संभव नहीं है। इसमें गंभीर संकट के समय राष्ट्रीय सरकार बनाने की व्यवस्था होती है।
- ***राजनीतिक चेतना और शिक्षा***– जनता में राजनीतिक चेतना पैदा होती है, लोगों को राजनीतिक प्रशिक्षण भी मिलता है। सरकार तथा विभिन्न दल समाचार पत्रों, सभा–सम्मेलनों, दलीय पत्रिकाओं आदि के माध्यम से जनता तक पहुँचते हैं और उन्हें जागरूक रखते हैं।
- ***राज्याध्यक्ष दलबंदी से दूर***– संसदीय प्रणाली में राज्य का प्रधान राष्ट्र की एकता का प्रतीक होता है, वह सरकार के आलोचनात्मक मित्र के रूप में कार्य करता है।
- ***वैकल्पिक शासन की व्यवस्था***– यदि किसी कारणवश सत्तारूढ़ दल अपना त्यागपत्र देता है तो तुरंत ही विरोधी दल को सरकार बनाने के लिए आमंत्रित करके वैकल्पिक सरकार बनाई जा सकती है। जिससे शासन के कार्यों में रूकावट पैदा नहीं होती है।
- ***जनता की इच्छा का प्रतिनिधित्व***– डायसी के शब्दों में, 'संसदीय प्रणाली में मंत्रिमंडल को जनमत के प्रति बहुत सचेत रहना पड़ता है।' मंत्रिमंडल जनता की इच्छा व उसकी आलोचनाओं की उपेक्षा नहीं कर सकता है, शासन व्यवस्था जनता के प्रति उत्तरदायी होती है।

### *संसदीय शासन प्रणाली के दोष*

**संसदीय शासन प्रणाली के दोष निम्नलिखित हैं**–

- ***अस्थिर शासन***– संसदीय शासन का पहला दोष यह है कि यह अस्थिर शासन प्रणाली होती है, क्योंकि मंत्रिपरिषद का कार्यकाल निश्चित नहीं होता है। बार–बार मंत्रिपरिषद के बदलने से प्रशासनिक नीतियों में भी स्थिरता नहीं रहती और इस प्रकार जनता के हितों को हानि पहुँचती है।
- ***शक्तिहीन कार्यपालिका***– अध्यक्षीय शासन की अपेक्षा संसदीय शासन में कार्यपालिका दुर्बल रहती है, क्योंकि पदच्युत होने के डर से वह संसद को प्रसन्न करने में लगी रहती है। मंत्रिपरिषद नई नीतियों का प्रयोग साहसपूर्वक नहीं कर पाती है।
- ***विधानमंडल में समय और शक्ति का दुरुपयोग***– संसदीय शासन में विभिन्न राजनीतिक दलों का पारस्परिक विरोध उग्र रूप धारण कर लेता है। विरोधी दल की आलोचना भी सदैव रचनात्मक नहीं होती है। इस गतिरोध से विधानमंडल में समय नष्ट होता है, कानून बनाने में विलंब होता है और जनता में उदासीनता आती है।
- ***उग्र राजनीतिक दलबंदी***– संसदीय शासन राजनीतिक दलबंदी को प्रोत्साहन देता है। लॉर्ड ब्राइस के शब्दों में, "यह प्रथा दलबंदी की भावना में वृद्धि करती है और इसे सदैव उबालती रहती है। यदि राष्ट्र के सामने महत्वपूर्ण नीति संबंधी विषय न हो तो भी इसमें पद प्राप्त करने की लड़ाई बनी रहती है। एक दल के पास पद होता है, दूसरा इसे लेने की इच्छा रखता है और यह झगड़ा चलता रहता है क्योंकि पराजित होने के शीघ्र बाद ही हारा हुआ दल जीते हुए दल को हटाने के लिए अभियान आरंभ कर देता है"।
- ***बहुमत दल की निरंकुशता का भय***– संसदीय शासन में बहुमत दल संसद और देश में निरकुंशता का व्यवहार करता है। प्राय: कैबिनेट के अधिनायकतंत्र की बात कही जाती है। यदि कार्यपालिका चाहे तो छोटे से छोटे विषय को विश्वास का प्रश्न बनाकर संसद को अपनी बात को मानने के लिए बाध्य कर सकती है।
- ***शक्ति पृथक्करण सिद्धांत की उपेक्षा***– संसदीय शासन में व्यवस्थापिका और कार्यपालिका में समन्वय रहता है। अत: शक्ति पृथक्करण के अभाव में न केवल व्यवस्थापिका की स्वतंत्रता समाप्त हो जाती है वरन् नागरिकों की स्वतंत्रता के अपहरण का डर भी बना रहता है।
- ***संकट के समय दुर्बल शासन***– युद्ध या राष्ट्रीय संकट के समय संसदीय शासन अनुपयुक्त रहता है। निर्णय लेने से पूर्व मंत्रिमंडल में पर्याप्त वाद–विवाद करना पड़ता है। मतभेद होने की स्थिति में प्रधानमंत्री को निर्णय लेने में कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। अधिकांश समय विचार–विमर्श व वाद–विवाद में नष्ट हो जाता है। प्रोगिलक्राइस्ट के शब्दों में, 'शांति के समय में वाद–विवाद करना संसदीय शासन का गुण है, परंतु युद्धकाल में यह इसके सबसे बड़े दोषों में से एक है।'
- ***नौकरशाही का शासन पर अनुचित प्रभाव***– संसदीय शासन में मंत्री पद उनको दिया जाता है, जो दल में अपना प्रभाव रखते हैं, जिन्हें राजनीतिक हथकंडे आते हैं। योग्यता के आधार पर तो कम लोगों को ही मंत्री पद मिलता है। फिर मंत्रियों का अधिकांश समय संसदीय वाद–विवादों में, दल की बैठकों में, उद्घाटन समारोह आदि में व्यतीत होता है। फलस्वरूप मंत्री नौसिखिए बने रहते हैं और विशेषज्ञों अर्थात् सिविल सेवकों के हाथों में वे कठपुतली बने रहते हैं।
- ***निजी कार्यक्षेत्र से विमुखता***– कई बार कार्यपालिका अपने प्रशासनिक कार्यों से विमुख होकर विधायी कार्यों में जुट जाती है, इसी प्रकार संसद कानून बनाने से विमुख होकर शासन कार्यों में अनुचित हस्तक्षेप करने लगती है।
- ***देश हित का उल्लंघन***– संसदीय शासन में सत्तारूढ़ दल का अपना दलीय स्वार्थ होता है। इस शासन में राष्ट्रीय हितों की उपेक्षा का भय सदैव बना रहता है। फलस्वरूप प्रजातंत्र का ह्रास होता है।
- ***सरकार गठन में बहुदलीय व्यवस्था का प्रभाव***– एक दल को जब स्पष्ट

बहुमत नहीं मिलता है तो गठबंधन सरकार बनती है, जो कि नीति निर्माण व क्रियान्वयन में बाधक सिद्ध होती है। फ्रांस ने बहुदलीय प्रणाली के कारण संसदीय प्रणाली को छोड़ दिया क्योंकि इसके कारण यहाँ सरकार में अस्थिरता बनी रहती थी।

## अध्यक्षात्मक शासन प्रणाली (Presidential Form of Government)

अध्यक्षात्मक/अध्यक्षीय शासन प्रणाली शक्ति विभाजन सिद्धांत पर आधारित होती है। अध्यक्षीय शासन प्रणाली का आधार शक्तियों के पृथक्करण का सिद्धांत है। इसमें व्यवस्थापिका, कार्यपालिका और न्यायपालिका सभी एक-दूसरे से पृथक व स्वतंत्र रहकर अपना कार्य करते हैं। कार्यपालिका से संबंधित शक्तियाँ राष्ट्रपति में ही निहित होती हैं जिनका प्रयोग वह स्वतंत्रतापूर्वक करता है। राष्ट्रपति या उसके मंत्री न तो व्यवस्थापिका के सदस्य होते हैं और न ही उसकी कार्यवाहियों में भाग लेते हैं। राष्ट्रपति का कार्यकाल भी निश्चित होता है। व्यवस्थापिका उसे अविश्वास प्रस्ताव द्वारा नहीं हटा सकती है। इसी प्रकार व्यवस्थापिका भी अपने गठन, कार्य तथा कार्यकाल की दृष्टि से कार्यपालिका से पृथक व स्वतंत्र होती है। संयुक्त राज्य अमेरिका, ब्राज़ील, अर्जेंटीना, चिली, मैक्सिको तथा एशियाई देश जैसे- फिलीपींस, दक्षिण कोरिया आदि इसके प्रमुख उदाहरण हैं।

प्रो. गार्नर ने अध्यक्षीय सरकार की परिभाषा इस प्रकार दी है- 'यह वह प्रणाली है जिसमें कार्यपालिका (मंत्रियों सहित राज्य का प्रधान) संवैधानिक रूप से अपने कार्यकाल के संबंध में और राजनीतिक नीतियों के संबंध में व्यवस्थापिका से स्वतंत्र होती है। इस प्रकार की प्रणाली में राज्य का प्रधान नाममात्र की कार्यपालिका नहीं होता, वरन वास्तविक कार्यपालिका होता है और उन शक्तियों का वास्तव में प्रयोग करता है, जो संविधान व कानून के अनुसार उसको प्राप्त होती हैं।'

### अध्यक्षीय शासन प्रणाली की विशेषताएँ

अध्यक्षीय शासन प्रणाली की विशेषताएँ निम्नलिखित हैं-

- ***राज्य के अध्यक्ष की स्थिति***- अध्यक्षीय शासन में राष्ट्रपति राज्य व सरकार दोनों का ही प्रधान होता है। वह राष्ट्रीय नीति का निर्माण करता है, सेनाओं के संचालन का आदेश देता है, आपातस्थिति की घोषणा कर सकता है तथा देश में व्यवस्था बनाए रखने हेतु कानूनों के प्रवर्तन के लिए सभी आवश्यक कदम उठाता है।
- ***राष्ट्रपति का निश्चित कार्यकाल***- अध्यक्षीय सरकार में राष्ट्रपति एक निश्चित अवधि के लिए निर्वाचित किया जाता है। इस अवधि से पहले व्यवस्थापिका उसे महाभियोग के अलावा अन्य किसी तरह से नहीं हटा सकती है।
- ***राष्ट्रपति व्यवस्थापिका के प्रति उत्तरदायी नहीं***- अध्यक्षीय शासन में राष्ट्रपति, व्यवस्थापिका के प्रति उत्तरदायी नहीं होता है तथा राष्ट्रपति (कार्यपालिका), व्यवस्थापिका को भंग नहीं कर सकता है। राष्ट्रपति तथा उसके मंत्री व्यवस्थापिका की कार्यवाहियों में भाग नहीं लेते। राष्ट्रपति व्यवस्थापिका में कोई महत्वपूर्ण भाषण देने हेतु जा सकता है अथवा वह अपना संदेश भेज सकता है जिसे व्यवस्थापिका स्वीकार या अस्वीकार कर सकती है। राष्ट्रपति या उसके मंत्री न तो व्यवस्थापिका के सदस्य होते हैं और न उन्हें अपने कार्यों के लिए व्यवस्थापिका के समर्थन पर निर्भर रहना पड़ता है।
- ***मंत्रिमंडल का अभाव***- राष्ट्रपति को सहायता व परामर्श देने के लिए कुछ सचिव होते हैं। इन सचिवों को सामूहिक नाम से 'राष्ट्रपति की कैबिनेट' कह दिया जाता है। परंतु सच्चे अर्थों में यह कैबिनेट नहीं है, न तो यह कैबिनेट एक इकाई के रूप में कार्य करती है, न ही वह विधायिका के प्रति उत्तरदायी है और न ही उसकी तानाशाही है। राष्ट्रपति ही उनका स्वामी है।
- ***शक्ति-पृथक्करण सिद्धांत पर आधारित***- यह शक्ति पृथक्करण के सिद्धांत पर आधारित होती है। सरकार के तीनों अंग एक-दूसरे से पृथक व स्वतंत्र होते हैं।

### अध्यक्षीय शासन प्रणाली के गुण

अध्यक्षात्मक शासन प्रणाली के प्रमुख गुण निम्नलिखित हैं-

- ***स्थायी एवं दृढ़ शासन***- अध्यक्षीय शासन का सबसे महत्वपूर्ण गुण है- शासन में स्थायित्व। निश्चित कार्यकाल के कारण, राष्ट्रपति अधिक आत्मविश्वास के साथ नीतियों का निर्माण व उन पर अमल कर सकता है। कार्यपालिका का भाग्य व्यवस्थापिका के परिवर्तनशील मत पर निर्भर नहीं होता है। अत: सरकार स्थिर नीति का पालन कर सकती है।
- ***कुशल शासन***- शक्ति पृथक्करण पर आधारित होने के कारण यह शासन संसदीय शासन की तुलना में अधिक कुशल होता है। इसका कारण बताते हुए मैरियट ने लिखा है कि, 'शासन की इस व्यवस्था में प्रशासन में वास्तविक रूप से कुशलता आती है, क्योंकि मंत्रियों को हर समय व्यवस्थापिका में उपस्थित रहने में समय लगाना नहीं होता और व्यवस्थापन कार्य भी कुशलता से होता है, क्योंकि व्यवस्थापिका के सदस्यों के मस्तिष्क अपने विशिष्ट कार्य में ही लगे रहते हैं'।
- ***दलबंदी का अभाव***- अध्यक्षीय शासन में दलबंदी का उग्र व दूषित वातावरण वैसा नहीं रहता, जैसा संसदीय शासन में देखा जाता है। इस प्रणाली में कार्यपालिका (राष्ट्रपति) व व्यवस्थापिका के निर्वाचनों के समय ही राजनीतिक दल सक्रिय रहते हैं, हर समय नहीं क्योंकि बीच में राष्ट्रपति को हटाया नहीं जा सकता है। अनावश्यक विरोध भी नहीं होता है और न राष्ट्रपति का दल उसका अंधानुकरण करता है। दलबंदी की भावना जितनी संसदात्मक प्रणाली में होती है, उतनी अध्यक्षीय प्रणाली में नहीं होती।
- ***संकटकाल के लिए उपयुक्त***- यह शासन संकटकाल के लिए सर्वाधिक उपयुक्त शासन है। कारण यह है कि, कार्यपालिका शक्तियाँ सैद्धांतिक व व्यवहारिक दोनों दृष्टियों से राष्ट्रपति में ही निहित होती हैं। अत: किसी संकट के समय में वह अकेला निर्णय लेने में समर्थ है।
- ***राष्ट्रीय एकता की सुदृढ़ता***- अध्यक्षीय शासन का एक गुण यह भी है कि, राष्ट्रीय एकता सुदृढ़ रहती है। राष्ट्रपति पूरे देश का नेता होता है, एक दल का नहीं। इसलिए भी उससे बुद्धिपूर्ण, न्यायोचित और राष्ट्रहित की अपेक्षा लोगों को रहती है।
- ***निरंकुशता का अभाव***- इस शासन प्रणाली में शक्ति पृथक्करण होता है। अत: शक्तियाँ एक स्थान पर केंद्रित न होने के कारण जनता के अधिकारों व स्वतंत्रताओं को संसदीय शासन की अपेक्षा कम खतरा रहता है।
- ***योग्य और अनुभवी व्यक्तियों को मंत्री पद***- अध्यक्षीय शासन में राष्ट्रपति मंत्रियों को योग्यता व अनुभव के आधार पर नियुक्त करने के लिए स्वतंत्र है। परंतु संसदीय सरकार में प्रधानमंत्री के ऊपर कई प्रकार के बंधन होते हैं और वह मंत्रियों की नियुक्ति केवल योग्यता व अनुभव के आधार पर नहीं करता है।
- ***बहुदलीय प्रणाली वाले देशों के लिए उपयुक्त***- उन देशों के लिए जहाँ बहुदलीय प्रणाली है, अध्यक्षीय शासन अधिक लाभकारी हो सकता है। कारण स्पष्ट है कि, राष्ट्रपति का निर्वाचन एक निश्चित समय के लिए हो जाएगा, संसदीय सरकार की तरह मिले-जुले मंत्रिमंडलों के बदलने का भय समाप्त हो जाएगा।

### *अध्यक्षीय शासन प्रणाली के दोष*

**अध्यक्षात्मक शासन प्रणाली के दोष निम्नलिखित हैं-**

- ***अनुत्तरदायी एवं निरंकुश शासन***- अध्यक्षीय शासन का सबसे बड़ा दोष यह है कि, इसमें राष्ट्रपति का कार्यकाल निश्चित होने के कारण उसके निरंकुश होने का खतरा बना रहता है। उसे महाभियोग की अत्यधिक कठिन प्रक्रिया होने के कारण आसानी से नहीं हटाया जा सकता। अत: वह एक अधिनायक की तरह शासन कर सकता है।
- ***सहयोग का अभाव***- अध्यक्षीय शासन में शक्ति पृथक्करण के कारण सरकार के विभिन्न अंगों में सहयोग नहीं रह पाता है, राष्ट्रपति न तो व्यवस्थापिका की समस्या को समझ पाता है और न व्यवस्थापिका राष्ट्रपति की समस्या को। कभी-कभी इन कारणों से शासन में मतभेद व गतिरोध पैदा हो जाता है। विशेष रूप से उस समय जब राष्ट्रपति के दल का व्यवस्थापिका में बहुमत न हो।
- ***कठोर शासन प्रणाली***- अध्यक्षीय शासन में लचीलेपन का गुण नहीं होता है, जो कि संसदीय शासन में होता है। इसके तीन कारण हैं, प्रथम, शासन संबंधी सभी बातें संविधान में निश्चित होती हैं। दूसरा, जब कोई संवैधानिक विवाद पैदा होता है तो न्यायालय की शरण ली जाती है, जिसका रवैया कठोर ही रहता है। तीसरा, संविधान कठोर होता है, अत: आवश्यकतानुसार संशोधन नहीं किये जा सकते हैं। ये सब बातें अमेरिका के संविधान में पायी जाती हैं।
- ***उत्तरदायित्व के निर्धारण की समस्या***- अध्यक्षीय शासन में जब कोई गलत कार्य होता है तो कार्यपालिका व व्यवस्थापिका इसका उत्तरदायित्व एक-दूसरे पर थोपने का प्रयास करते हैं। संसदीय शासन की तरह यह उत्तरदायित्व कार्यपालिका के पास निश्चित नहीं होता है। चूँकि राजसत्ता बँट जाती है, अत: यह पता नहीं चलता कि शासन की बुराई के लिए कार्यपालिका दोषी है अथवा विधानमंडल।
- ***वैदेशिक नीति की दुर्बलता***- अमेरिकी अध्यक्षीय शासन के संदर्भ में यह कहा जा सकता है कि, राष्ट्रपति स्वतंत्र व सुदृढ़ वैदेशिक नीति पर नहीं चल सकता, क्योंकि व्यवस्थापिका उसके कार्यों में बाधा डालती है। 1919 में राष्ट्रपति विलसन द्वारा की गयी 'वर्साय की संधि' को अमेरिकी सीनेट ने ठुकरा दिया था।
- ***एक व्यक्ति पर उत्तरदायित्व***- अध्यक्षीय शासन का एक दोष यह भी है कि, शासन का पूरा भार एक ही व्यक्ति (राष्ट्रपति) पर होता है। अत: शासन की सफलता या विफलता उसी के गुणों व अवगुणों पर निर्भर रहती है।

### *संसदात्मक व अध्यक्षात्मक सरकारों में अंतर*

**संसदात्मक व अध्यक्षात्मक सरकारों में सामान्यत: निम्नलिखित अंतर पाये जाते हैं-**

- संसदीय सरकार का आधार शक्तियों का संयोजन है, जबकि अध्यक्षीय सरकार का आधार है- शक्ति पृथक्करण।
- संसदीय सरकार में राज्य का प्रधान (राजा या राष्ट्रपति) नाममात्र का होता है, प्रधानमंत्री सहित मंत्रिपरिषद वास्तविक कार्यपालिका होती है। अध्यक्षीय शासन में, राष्ट्रपति ही राज्य व सरकार दोनों का प्रधान होता है। अत: एक ही कार्यपालिका होती है।
- संसदीय सरकार में कार्यपालिका, व्यवस्थापिका से स्वतंत्र नहीं रहती जबकि अध्यक्षीय शासन में वह व्यवस्थापिका से स्वतंत्र रहती है। अध्यक्षीय शासन में व्यवस्थापिका व कार्यपालिका दोनों के कार्यक्षेत्र अलग-अलग रहते हैं।
- संसदीय शासन में कार्यपालिका तभी तक अपने पद पर है, जब तक उसे संसद (प्राय: निचले सदन) में बहुमत का समर्थन प्राप्त है, परंतु अध्यक्षीय शासन में कार्यपालिका (राष्ट्रपति) का कार्यकाल संविधान द्वारा निश्चित होता है। इससे पहले केवल महाभियोग की कार्यवाही से ही उसे पदच्युत किया जा सकता है।
- संसदीय शासन में मंत्रिगण व्यक्तिगत व सामूहिक रूप से व्यवस्थापिका के प्रति उत्तरदायी होते हैं, परंतु अध्यक्षीय शासन में केवल राष्ट्रपति के प्रति उत्तरदायी होते हैं।
- संसदीय शासन में मंत्रिगण आवश्यक रूप से व्यवस्थापिका के सदस्य होते हैं और उनकी कार्यवाहियों में भाग लेते हैं। इतना ही नहीं वे व्यवस्थापिका का मार्ग-निर्देशन व नेतृत्व भी करते हैं। अध्यक्षीय शासन में मंत्री राष्ट्रपति के अधीनस्थ होते हैं।
- संसदीय सरकार में प्रधानमंत्री देश का नेतृत्व करता है और अध्यक्षीय शासन में राष्ट्रपति देश का नेतृत्व करता है।

## *एकात्मक शासन प्रणाली*
## *(Unitary Form of Government)*

एकात्मक शासन व्यवस्था में शक्तियों का केंद्रीकरण होता है। संविधान द्वारा शासन की समस्त शक्तियाँ केवल केंद्रीय सरकार को ही सौंपी जाती है तथा इकाइयों को शासन की शक्तियाँ केंद्र से प्राप्त होती हैं। स्थानीय अथवा इकाइयों की सरकारों का अस्तित्व एवं शक्तियाँ केंद्रीय सरकार की इच्छा पर निर्भर करती है। एकात्मक शासन व्यवस्थाओं के प्रमुख उदाहरण हैं- ब्रिटेन, फ्रांस, चीन और बेल्जियम।

### *विभिन्न विद्वानों ने एकात्मक शासन की परिभाषाएँ दी हैं-*

- ***सी.एफ.स्ट्रांग के अनुसार***- 'एकात्मक शासन में केंद्रीय सरकार सर्वोच्च होती है तथा संपूर्ण शासन एक केंद्रीय सरकार के अधीन संगठित होता है और उसके अधीन जो भी क्षेत्रीय प्रशासन कार्य करता है, उसकी शक्तियाँ उसे केंद्र सरकार से प्राप्त होती हैं।'
- ***फाइनर के शब्दों में***- 'एकात्मक शासन वह शासन है, जिसमें संपूर्ण सत्ता व शक्ति केंद्र में निहित होती है और जिसकी इच्छा एवं अभिकरण पूर्ण क्षेत्र पर वैध रूप से मान्य होते हैं।'
- ***प्रो. गार्नर के अनुसार***- 'एकात्मक शासन, शासन का वह रूप है जिसमें शासन की सर्वोच्च शक्ति संविधान के माध्यम से एक केंद्रीय सरकार को प्राप्त होती है तथा केंद्र एवं स्थानीय सरकार के बीच संवैधानिक शक्ति का विभाजन नहीं होता और केंद्र सरकार से ही स्थानीय सरकारों को शक्ति एवं स्वतंत्रता प्राप्त होती है।'
- ***डायसी के शब्दों में***- 'एकात्मक राज्य में कानून बनाने की समस्त शक्तियाँ केंद्रीय सत्ता के हाथों में रहती है।'
- ***विलोबी के शब्दों में***- 'एकात्मक शासन में शासन का संपूर्ण अधिकार मौलिक रूप से एक केंद्रीय सरकार में निहित रहता है तथा केंद्रीय सरकार अपनी इच्छानुसार शक्तियों का वितरण इकाइयों में करती है।'

### *एकात्मक शासन प्रणाली की विशेषताएँ*

एकात्मक शासन प्रणाली की निम्नलिखित विशेषताएँ हैं-

- ***शासन की पूर्ण शक्ति केंद्र में निहित***- एकात्मक शासन की प्रमुख विशेषता यह है कि, शासन की समस्त कार्य शक्तियाँ केंद्रीय सरकार में निहित रहती हैं। शासन की सुविधा के लिए राज्य को प्रदेशों एवं प्रांतों में बाँटा जा सकता है। किंतु इन प्रदेशों व प्रांतीय सरकारों को शासन कार्य के लिए स्वतंत्र शक्तियाँ प्राप्त नहीं होतीं। केंद्र ही उन्हें आवश्यकतानुसार शक्तियाँ देता है। इनका अस्तित्व पूर्णत: केंद्र सरकार की इच्छा पर निर्भर रहता है।

- ***इकहरी नागरिकता***– एकात्मक शासन में नागरिकों को इकहरी नागरिकता (केंद्र की) प्राप्त होती है, जैसे–ब्रिटेन जबकि संघात्मक शासन में केंद्र व राज्यों की पृथक–पृथक यानि दोहरी नागरिकता प्राप्त होती है, जैसे– USA
- ***एक संविधान***– एकात्मक शासन में संपूर्ण राष्ट्र का एक संविधान होता है। इकाइयों का कोई अलग संविधान नहीं होता। संघात्मक शासन में कहीं–कहीं पर राज्यों का अलग–अलग संविधान भी होता है।

### *एकात्मक शासन प्रणाली के गुण*

**एकात्मक शासन प्रणाली के निम्नलिखित गुण पाये जाते हैं, जो उसे महत्वपूर्ण बनाते हैं–**

- ***शासन में एकरूपता व शक्ति संपन्नता***– एकात्मक शासन व्यवस्था में शासन में एकरूपता पाई जाती है। संपूर्ण राष्ट्र के लिए एक–सा कानून होता है और केंद्र के निर्देशन में उसे समान रूप से सर्वत्र लागू किया जाता है। फलतः पूरे राष्ट्र के शासन कार्यों में एकरूपता बनी रहती है।
- ***राष्ट्रीय एकता में वृद्धि***– एकात्मक शासन व्यवस्था में संपूर्ण राज्य में एक–सा कानून, एक–सी शासन व्यवस्था होने तथा सभी को एक समान न्याय मिलने के कारण, आपसी मतभेद पैदा नहीं हो पाते और राष्ट्रीय एकता में वृद्धि होती है।
- ***संकटकाल के लिए उपयुक्त***– एकात्मक शासन व्यवस्था में शासन की शक्ति एक ही स्थान पर केंद्रित होने के कारण संकट के समय यह शीघ्र निर्णय लेने में सक्षम होता है। इन निर्णयों को गुप्त भी रखना होता है और शीघ्र ही कार्यान्वित भी करना पड़ता है, इस हेतु एकात्मक शासन ही सक्षम होता है।
- ***मितव्यत्तता***– एकात्मक शासन व्यवस्था में एक ही स्थान से शासन का संचालन होने और राज्य इकाइयों में अलग से कोई मंत्रिमंडल व व्यवस्थापिका का गठन न करने से काफी खर्च बच जाता है। इस दृष्टि से यह मितव्ययी शासन व्यवस्था है।
- ***छोटे राज्यों के लिए उपयोगी***– एकात्मक शासन व्यवस्था छोटे राज्यों के लिए बहुत ही उपयोगी है, क्योंकि इसमें संपूर्ण शासन का संचालन एक ही स्थान से किया जाता है।
- ***नीति–निर्माण में एकरूपता***– एकात्मक शासन प्रणाली में नीति संबंधी जो भी निर्णय लिए जाते हैं उनमें एकरूपता बनी रहती है, क्योंकि ये निर्णय एक स्थान से अर्थात केंद्र से लिये जाते हैं।
- ***आर्थिक विकास के लिए उपयुक्त***– एकात्मक शासन व्यवस्था में एक ही स्थान से निर्णय लिये जाने के कारण पूरे राष्ट्र की आर्थिक आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर निर्णय लिये जा सकते हैं, जिस कारण यह व्यवस्था आर्थिक विकास के लिए उपयोगी होती है।
- ***अंतर्राष्ट्रीय परिपेक्ष्य में सुदृढ़ता***– एकात्मक शासन के अंतर्गत, अंतर्राष्ट्रीय मामलों में शीघ्रता से निर्णय लिया जा सकता है, समान रूप से नीति का अनुसरण किया जा सकता है और अंतर्राष्ट्रीय उत्तरदायित्वों को अधिक कुशलता के साथ निभाया जा सकता है।
- ***संघर्ष की संभावना नहीं***– एकात्मक शासन में शासन की समस्त शक्तियां केंद्र के हाथों में रहती हैं तथा इकाइयाँ केंद्र के पूर्णतः अधीन होकर कार्य करती हैं। जिस कारण केंद्र तथा इकाइयों के बीच संघर्ष की संभावना नहीं रहती और प्रशासनिक निर्णय लेने में आसानी होती है।

### *एकात्मक शासन प्रणाली के दोष*

**अनेक गुणों के बावजूद एकात्मक शासन प्रणाली की कुछ कमियां भी हैं जो निम्नलिखित हैं–**

- ***शासन की कार्य कुशलता में कमी***– एकात्मक शासन में शासन कार्यों का संपूर्ण संचालन एक ही स्थान अर्थात केंद्र से संचालित होता है, जिसे शासन कार्य की कुशलता के लिए उपर्युक्त नहीं कहा जा सकता, क्योंकि एक ही स्थान से केंद्रीय सरकार पूरे देश में कुशल शासन संचालन कर ले यह संभव नहीं है। अतः देश के सभी भागों के हितों व आवश्यकताओं की पूर्ति केंद्र द्वारा नहीं हो सकती।
- ***लोकतांत्रिक भावना के विरुद्ध***– एकात्मक शासन व्यवस्था लोकतंत्र की भावना के विरुद्ध है क्योंकि इसमें प्रांतीय अथवा स्थानीय स्वशासन को वो महत्ता नहीं मिलती जो लोकतंत्र में मिलनी चाहिए।
- ***शासन की निरंकुशता की संभावना***– एकात्मक शासन व्यवस्था में शासन की निरंकुशता का भय बना रहता है क्योंकि शासन की समस्त शक्तियां केंद्र में ही निहित होती हैं। केंद्र अपनी शक्तियों को बढ़ा कर निरंकुश न हो जाए और शासन के सभी क्षेत्रों में अपनी मनमानी न करने लगे, इस बात की संभावना बनी रहती है।
- ***विविधताओं वाले राष्ट्रों में असफल***– छोटे–छोटे राज्यों के लिए यह शासन व्यवस्था सफल हो सकती है, बड़े व विविधताओं वाले राष्ट्रों में नहीं, क्योंकि एक ही स्थान से शासन चलाने पर विभिन्न जाति, धर्म, भाषाओं व नस्लों के लोगों के हितों की पूर्ति संभव नहीं हो सकती।
- ***स्थानीय संस्थाओं के क्रिया–कलापों पर प्रतिबंध***– एकात्मक शासन व्यवस्था में, शासन में इतनी कठोरता और अंकुश रहता है कि इससे स्थानीय संस्थानों के क्रिया–कलापों पर प्रतिबंध लग जाते हैं और उनकी स्वायत्तता लगभग समाप्त हो जाती है।
- ***शासन कार्यों के प्रति उदासीन जनता***– जनता को सार्वजनिक कार्यों में भागीदारी का पूर्ण अवसर प्राप्त नहीं होता, जिस कारण जनता सार्वजनिक कार्यों के प्रति उदासीन रहती है।

## *संघात्मक शासन प्रणाली (Federal Governance System)*

संघात्मक शासन प्रणाली में संविधान के द्वारा केंद्र व उसकी इकाइयों के बीच शक्तियों का विभाजन किया जाता है। इस शासन में संघीय (केंद्रीय) सरकार और राज्य सरकारें अपने–अपने क्षेत्रों में संविधान द्वारा दी गई शक्तियों के आधार पर शासन कार्य करती हैं। संघ शब्द की उत्पत्ति लैटिन भाषा के फोएड्स शब्द से हुई है, जिसका अर्थ है, 'समझौता' या 'संधि'। इस अर्थ के आधार पर समझौता या संधि द्वारा निर्मित राज्य को 'संघ' कहा जाता है। विश्व के 6 बड़े राज्यों में 5 संघीय राज्य हैं, जैसे– संयुक्त राज्य अमेरिका, कनाडा, ऑस्ट्रेलिया, ब्राजील, रूस आदि।

### *परिभाषाएँ*

- ***फाइनर के अनुसार***– 'संघात्मक राज्य वह है, जिसमें सत्ता शक्ति का एक भाग इकाइयों में निहित रहता है, दूसरा भाग केंद्र में, जो क्षेत्रीय इकाइयों के लोगों द्वारा जान–बूझकर संगठित की जाती है।'
- ***गार्नर के अनुसार***– 'संघ एक ऐसी प्रणाली है, जिसमें केंद्रीय तथा स्थानीय सरकारें एक ही प्रभुत्व शक्ति (संविधान) के अधीन होती हैं तथा ये सरकारें अपने–अपने क्षेत्र में संविधान द्वारा दी गई शक्तियों के आधार पर ही कार्य करती हैं।'
- ***स्ट्रांग के शब्दों में***– 'एक संघात्मक राज्य कई राज्यों के मेल से बना एक प्रभुत्व संपन्न राज्य होता है जिसकी अपनी सत्ता, मेल करने वाले राज्यों से प्राप्त होती है और जिसमें वे राज्य इस प्रकार बंधे होते हैं कि जिससे एक राजनीतिक इकाई का निर्माण होता है।'

### *संघात्मक शासन की विशेषताएँ*

संघात्मक शासन की प्रमुख विशेषताएँ निम्नलिखित हैं-

- ***लिखित एवं कठोर संविधान***- संघीय शासन का संविधान लिखित एवं कठोर होता है, ऐसा इसलिए कि इकाइयों के अहित में संविधान में कोई संशोधन न हो सके।
- ***संविधान की सर्वोच्चता***- संघात्मक शासन में संविधान सर्वोच्च होता है। संघात्मक शासन में इकाइयां तथा संघ संविधान द्वारा प्राप्त शक्तियों के आधार पर ही कार्य करती हैं, वे संविधान के प्रतिकूल कोई कार्य नहीं कर सकती हैं।
- ***संप्रभु शक्ति का दोहरा प्रयोग***- संघीय शासन में संप्रभुता अविभाजित होती है, किंतु एक संघीय राज्य में संप्रभुता की अभिव्यक्ति केंद्र सरकार व राज्य सरकार को प्राप्त शक्तियों के आधार पर होती है तथा दोनों ही अपनी शक्तियां संविधान से प्राप्त करती हैं।
- ***कार्यों एवं शक्ति का विभाजन***- संघीय शासन व्यवस्था में शासन की शक्तियों का विभाजन संविधान द्वारा केंद्र व राज्य सरकारों के बीच किया जाता है। शक्तियों के वितरण के साथ ही दोनों सरकारें अपने-अपने क्षेत्रों में कार्य करने को भी स्वतंत्र होती हैं।
- ***स्वतंत्र एवं सर्वोच्च न्यायपालिका***- संघीय शासन में सर्वोच्च न्यायालय स्वतंत्र होता है। उस पर सरकार के किसी भी अंग (व्यवस्थापिका व कार्यपालिका) का न तो कोई प्रभाव होता है, न ही कोई दबाव। संविधान के संरक्षक के रूप में होने के कारण यह सर्वोच्च होता है।
- ***दोहरी नागरिकता***- संघीय शासन व्यवस्था में नागरिकों को दोहरी नागरिकता प्राप्त होती है, एक तो केंद्र की व दूसरी राज्यों (इकाइयों) की। किंतु भारतीय संघ इसका एक अपवाद है। यहाँ नागरिकों को संघ की ही नागरिकता प्राप्त होती है।
- ***संबंध विच्छेद की स्वीकृति नहीं***- संघीय शासन व्यवस्था में संघ एक स्थाई राज्य होता है। इसलिए किसी भी संघात्मक राज्यों में इकाइयों को केंद्र से अलग होने की स्वतंत्रता प्राप्त नहीं होती है।
- ***द्विसदनीय विधानमंडल***- संघीय शासन व्यवस्था में द्विसदनीय विधानमंडल (संसद) की व्यवस्था होती है। पहला सदन, जिसमें राष्ट्र का प्रतिनिधित्व होता है और दूसरा सदन, जिसमें संघ की इकाइयों को प्रतिनिधित्व दिया जाता है। अमेरिकी 'प्रतिनिधि सभा' व भारत की 'लोकसभा' समस्त राष्ट्र का प्रतिनिधित्व करती हैं, जबकि 'सीनेट' व 'राज्य सभा' इकाइयों का प्रतिनिधित्व करती हैं।

### *संघात्मक शासन के गुण*

**विश्व के अनेक देशों में स्वीकृत संघात्मक शासन प्रणाली में निम्नलिखित गुण होते हैं-**

- ***विविधता वाले राष्ट्रों के लिए उपयोगी***- संघात्मक शासन व्यवस्था विविधता वाले राष्ट्रों के लिए उपयोगी है। जिस राष्ट्र में धर्म, जाति, वर्ग व भाषा के आधार पर विविधता पाई जाती है, उस राष्ट्र में यह शासन व्यवस्था इन विविधताओं की रक्षा करते हुए उपयोगी सिद्ध होती है। इस शासन व्यवस्था के अंतर्गत राष्ट्रीय एकता एवं स्थानीय शासन दोनों के ही हित संभव हैं।
- ***छोटे व कमजोर राज्यों के लिए उपयुक्त***- संघीय शासन व्यवस्था में छोटे व कमजोर राज्य संगठित होकर शक्तिशाली राज्य बन सकते हैं, क्योंकि संघीय शासन व्यवस्था में छोटे व कमजोर राज्यों की स्वतंत्रता और उनका पृथक अस्तित्व बना रहता है और उन्हें आर्थिक विकास व सुरक्षा के पूर्ण अवसर प्राप्त होते हैं।
- ***बड़े राष्ट्रों हेतु उपयोगी***- संघीय शासन प्रशासनिक क्षमता की दृष्टि से बड़े राष्ट्रों के लिए उपयोगी है। संघीय शासन में केंद्र व राज्य इकाइयों के बीच शासन कार्यों की शक्तियों का बंटवारा होने के कारण यह शासन विशाल राज्यों के लिए उपयुक्त है।
- ***नागरिक अधिकारों की सुरक्षा***- संघीय शासन में नागरिक अधिकारों की सुरक्षा बनी रहती है, क्योंकि इस शासन व्यवस्था में शासन की निरंकुशता पर नियंत्रण लगाये जाते हैं, जिससे नागरिक अधिकार सुरक्षित रहते हैं।
- ***आर्थिक रूप से लाभकारी***- संघात्मक शासन आर्थिक रूप से लाभकारी है। इस शासन व्यवस्था में केंद्र तथा राज्य इकाइयों को अपने-अपने आर्थिक संसाधनों को विकसित करने का अवसर मिलता है। संघात्मक शासन मितव्ययी भी होता है।
- ***सार्वजनिक कार्यों में सहभागिता***- संघात्मक शासन में नागरिकों की राजनीतिक चेतना के कारण सार्वजनिक कार्यों के प्रति उनमें उत्साह रहता है। संघात्मक शासन में नागरिकों को शासन-कार्यों में भागीदारी प्राप्त होती है।
- ***लोकतांत्रिक व्यवस्था में उपयोगी***- संघात्मक शासन-व्यवस्था प्रजातंत्र के लिए उपयोगी है, क्योंकि इसमें सत्ता के विकेंद्रीकरण के कारण स्थानीय स्वशासन की भावनाओं का विकास होता है, जो प्रजातंत्र की सफलता के लिए आवश्यक है।
- ***निरंकुशता में कमी***- संघात्मक शासन व्यवस्था में सरकार के निरकुंश होने की संभावना नहीं रहती। शासन-सत्ता का स्पष्ट विभाजन रहने के कारण केंद्रीय सरकार निरकुंश और स्वेच्छाचारी नहीं बन सकती है। संविधान तथा न्यायपालिका का उनकी शक्तियों पर नियंत्रण रहता है।

### *संघात्मक शासन के दोष*

**अनेक गुणों का संघटन होने के बावजूद संघात्मक शासन में कुछ सन्निहित दोष भी पाये जाते हैं, जो निम्नलिखित हैं-**

- ***संगठन व कार्य पद्धति में भिन्नता***- संघीय शासन प्रणाली में प्रशासनिक संगठन व कार्य पद्धति में भिन्नता पाई जाती है, क्योंकि केंद्र एवं राज्यों को अपने-अपने क्षेत्रों में कार्य करने के लिए स्वतंत्रता और शक्तियां प्राप्त होती हैं।
- ***जटिल और खर्चीली शासन प्रणाली***- संघीय शासन व्यवस्था में संविधान कठोर होने के कारण इसमें आसानी से संशोधन नहीं किया जा सकता, जिस कारण कई बार शासन कार्यों में परेशानी आ जाती है और शासन कार्य जटिल हो जाता है। केंद्र व राज्यों में दोहरी शासन प्रणाली होने के कारण यह व्यवस्था बहुत ही खर्चीली हो जाती है।
- ***केंद्र व राज्य सरकारों में विवाद***- इस शासन व्यवस्था में कई बार संघ व राज्य सरकारों में शासन कार्यों के विषय में विवाद उत्पन्न हो जाता है। वित्तीय शक्तियों के संदर्भ में यह विवाद अधिकतर उभर कर सामने आ जाते हैं।
- ***संकट काल में अनुपयुक्त***- संघीय शासन प्रणाली में संविधान संशोधन की प्रक्रिया अत्यंत जटिल होती है, जिस कारण यह शासन प्रणाली संकटकाल के लिए उपयोगी नहीं होती।
- ***प्रशासनिक कार्यों में एकरूपता का अभाव***- संघीय शासन में केंद्र व राज्य सरकारों को अपने-अपने क्षेत्रों में कार्य करने के लिए स्वतंत्रता व शक्तियां प्राप्त होती हैं और वे अपने-अपने राजनीतिक हितों और सुविधाओं के अनुसार कार्य करती हैं, कभी-कभी एक राज्य की नीति दूसरे राज्य पर गलत प्रभाव डालती है।

### *एकात्मक और संघात्मक शासन प्रणाली में अंतर*

**एकात्मक और संघात्मक शासन प्रणालियों में निम्नलिखित आधारों पर अंतर पाया जाता है-**

- ***कार्यों और शक्तियों के विभाजन के आधार पर***- एकात्मक शासन प्रणाली में शक्ति का स्रोत केंद्र ही होता है। स्थानीय सरकारों को जो भी शक्ति प्राप्त होती है, वह केंद्र के द्वारा ही होती है और शासन कार्यों में किसी भी प्रकार का विभाजन नहीं होता। किंतु संघात्मक शासन में शासन शक्तियां केंद्र में निहित न होकर क्षेत्रीय सरकारों में भी वितरित होती हैं और इन शक्तियों का स्रोत संविधान होता है।
- ***सरकारों की स्थिति के आधार पर अंतर***- एकात्मक शासन व्यवस्था में केंद्र सरकार के पास शासन की समस्त शक्तियां होती हैं तथा स्थानीय सरकारें केंद्र के अधीन रह कर कार्य करती हैं। अत: इस शासन व्यवस्था में स्थानीय सरकारों का अपना कोई स्वतंत्र अस्तित्व नहीं होता। इसके विपरीत संघात्मक शासन में केंद्र के साथ-साथ स्थानीय सरकारों को भी शासन शक्तियां प्राप्त होती हैं तथा वे केंद्र से स्वतंत्र होकर संविधान की सीमाओं में रहकर कार्य करती हैं।
- ***नागरिकता के आधार पर अंतर***- एकात्मक शासन वाले राज्यों में नागरिकों की एक ही नागरिकता होती है अर्थात राष्ट्रीय नागरिकता होती है, जबकि संघात्मक राज्यों में नागरिकों को राष्ट्रीय नागरिकता के साथ-साथ इकाइयों की नागरिकता भी प्राप्त होती है अर्थात संघात्मक राज्यों में दोहरी नागरिकता प्राप्त होती है।
- ***संविधान की स्थिति के आधार पर अंतर***- एकात्मक शासन वाले राज्यों में संविधान लिखित और अलिखित दोनों प्रकारों का हो सकता है, जबकि संघात्मक शासन वाले राज्यों में शासन की शक्ति केंद्र व राज्य सरकारों में विभाजित होती है और उस विभाजन को स्पष्ट करने की दृष्टि से संविधान का लिखित होना अनिवार्य है।
- ***न्यायपालिका के कार्य संबंधी अंतर***- संघात्मक शासन में न्यायपालिका को केंद्र व इकाइयों, इकाई व इकाई के पारस्परिक अधिकारों संबंधी विवादों का निर्णय करना होता है, जबकि एकात्मक शासन में न्यायपालिका का कार्य मात्र यह देखना होता है कि व्यवस्थापिका द्वारा पारित कानून कितनी ईमानदारी से लागू हो रहे हैं।

## *विभिन्न संविधानों का तुलनात्मक अध्ययन*

विश्व के संविधानों का तुलनात्मक अध्ययन उनमें निहित विशेषताओं तथा समानताओं के आधार पर हम निम्नलिखित रूप में कर सकते हैं-

### *संविधान संशोधन*

- भारतीय संविधान नम्य व अनम्य प्रावधानों का समन्वय है, जिसमें अनुच्छेद 368 के अनुसार, संशोधन दो प्रकार से होता है प्रथम- उपस्थित व मतदान करने वालों के दो-तिहाई मत अर्थात् विशेष बहुमत द्वारा तथा द्वितीय-संसद के विशेष बहुमत व आधे से अधिक राज्यों की सहमति द्वारा होता है। भारतीय संविधान में संशोधन के पश्चात् उसके मूल रूप में परिवर्तन नहीं होना चाहिए।
- ब्रिटेन में विधानमंडल द्वारा साधारण पद्धति से संशोधन की प्रक्रिया संपन्न की जाती है। वहां संसद साधारण कानूनों के अनुरूप साधारण बहुमत से किसी भी संवैधानिक व्यवस्था को परिवर्तित कर सकती है। भारतीय संविधान में भी कतिपय अनुच्छेदों को इस पद्धति के द्वारा संशोधित किया जा सकता है। जैसे, अनुच्छेद 2 में संसद को यह शक्ति दी गई है कि नये राज्य का निर्माण उसके नाम में परिवर्तन व सीमा में परिवर्तन साधारण बहुमत द्वारा कर सकती है।
- विधानमंडल द्वारा विशेष प्रतिबंधों के साथ संशोधन की पद्धति में संशोधन विधानमंडल द्वारा ही किया जाता है पर कुछ व्यवस्थाओं को भी जोड़ दिया जाता है, जैसा कुछ देशों में किया जाता है:-
  - बेल्जियम तथा रूमानिया में प्रस्तावित संशोधन के लिए सदस्यों की एक निश्चित संख्या अनिवार्य है तथा उसे पारित करने के लिए साधारण बहुमत से अधिक बहुमत की व्यवस्था की जाती है।
  - नॉर्वे तथा स्वीडन में संविधान संशोधन से पहले विधानसभा को भंग कर दिया जाता है तथा संशोधन को आधार बनाकर चुनाव लड़ा जाता है। चुनाव के पश्चात् नवीन व्यवस्थापिका को ही संविधान में संशोधन का अधिकार प्रदान किया जाता है।
  - दक्षिण अफ्रीका में संविधान संशोधन के लिए व्यवस्थापिका के दोनों सदनों के संयुक्त अधिवेशन का प्रावधान है, जबकि भारत में ऐसी कोई व्यवस्था नहीं है।
- जनमत द्वारा लोकमत निर्देशन से संशोधन का प्रावधान स्विट्जरलैंड, ऑस्ट्रेलिया, आयरलैंड तथा कुछ सीमा तक इटली व फ्रांस में प्रयुक्त किया जाता है। इस पद्धति में संविधान के संशोधनों पर जनता का मत जानने के लिए जनमत संग्रह कराया जाता है। यह जनमत ऐच्छिक या अनिवार्य हो सकता है। संविधान संशोधन उसी स्थिति में स्वीकार्य माना जाता है, जब जनता उस संशोधन के पक्ष में अपना मत दे।
- संघ राज्य की इकाइयों के बहुमत से संशोधन का प्रावधान संघात्मक राज्यों जैसे भारत व अमेरिका में पाया जाता है। इस प्रक्रिया में विधानमंडल द्वारा पास किये गये प्रस्तावों पर राज्यों के विधानमंडलों की स्वीकृति आवश्यक होती है। अमेरिका में यह अनुपात 3/4 तथा भारत में 1/2 से अधिक है।
- लैटिन अमेरिका, बुल्गारिया तथा अमेरिका आदि देशों में संविधान का संशोधन विशेष सम्मेलन द्वारा किया जाता है। जिसमें संविधान संशोधन के लिए एक विशिष्ट सभा की रचना की जाती है।
- रूस का संविधान एक अचल संविधान है, यहां संविधान में संशोधन का प्रस्ताव दोनों सदनों के दो-तिहाई बहुमत द्वारा पारित किया जाता है।

### *शक्ति पृथक्करण का सिद्धांत*

- भारत में संसदात्मक शासन प्रणाली होने के कारण व्यवस्थापिका तथा कार्यपालिका समन्वयात्मक रूप से कार्य करती हैं। दोनों अन्तर्निभर हैं तथापि न्यायपालिका पूर्णतया स्वतंत्र है। इस प्रकार भारत में पूर्ण पृथक्करण न होकर आंशिक शक्ति विभाजन पाया जाता है।
- ब्रिटेन में वास्तव में शक्ति पृथक्करण न होकर मंत्रिमंडलात्मक पद्धति है, जिसमें कार्यपालिका तथा व्यवस्थापिका का अटूट संबंध है। उच्च सदन अर्थात् हाऊस ऑफ लार्ड्स देश का सर्वोच्च न्यायालय है। इस प्रकार वहां शक्ति का पृथक्करण न होकर शक्ति का समन्वय अथवा सामंजस्य है।
- फ्रांस में शक्ति पृथक्करण का सिद्धांत अंशत: लागू है। उदाहरणार्थ, चतुर्थ गणतंत्र के संविधान में शक्ति के पृथक्करण को स्थान नहीं दिया गया तथापि पंचम गणतंत्र के संविधान में कार्यपालिका को व्यवस्थापिका से पृथक करने का प्रयास किया गया। राष्ट्रपति जो कार्यपालिका का अध्यक्ष है, उसका निर्वाचन संसद द्वारा न करके एक निर्वाचक मंडल द्वारा किया जाता है तथा मंत्रियों को संसद की सदस्यता से वंचित कर दिया गया है तथापि शक्तियों का पूर्ण पृथक्करण नहीं हुआ है।
- जापान के संविधान में शक्ति विभाजन का सिद्धांत आंशिक रूप से अपनाया गया है तथा न्यायपालिका को स्वतंत्रता दी गई है। कार्यपालिका को किसी भी अधिकरण की अंतिम शक्ति नहीं सौंपी गई है। कार्यपालिका तथा व्यवस्थापिका को एक-दूसरे से पृथक रखने का प्रयास किया गया है।

- स्विट्जरलैंड के संविधान में भी आंशिक शक्ति पृथक्करण है। यद्यपि कार्यपालिका का निर्वाचन व्यवस्थापिका द्वारा होता है तथापि कार्यपालिका के पास व्यवस्थापिका को भंग करने की शक्ति नहीं है, न ही व्यवस्थापिका अविश्वास प्रस्ताव पारित करके कार्यपालिका को अपदस्थ कर सकती है।
- सोवियत संघ ने, संविधान में शक्ति के पृथक्करण सिद्धांत को नहीं अपनाया था। यहां मंत्रिपरिषद का चुनाव सुप्रीम सोवियत द्वारा होता था तथा मंत्रिपरिषद सुप्रीम सोवियत के प्रति उत्तरदायी होती थी। इसी प्रकार उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशों की नियुक्ति भी सर्वोच्च सोवियत द्वारा की जाती थी। यद्यपि न्यायाधीशों को कानून की दृष्टि से स्वतंत्रता प्राप्त थी, परन्तु उन्हें संविधान की व्यवस्था करने का अधिकार नहीं है। यह अधिकार केवल प्रेसीडियम को था। प्रेसीडियम का स्वरूप तथा संगठन, शक्ति पृथक्करण सिद्धांत के सर्वथा विपरीत है।
- अमेरिकी संविधान की विशेषता शक्ति का पृथक्करण, नियंत्रण और संतुलन प्रणाली है। अमेरिकी संविधान में समस्त व्यवस्थापिका संबंधी शक्तियां एक कांग्रेस में निहित होंगी तथा कार्यपालकीय शक्तियां राष्ट्रपति में निहित होंगी। न्याय संबंधी शक्ति सर्वोच्च न्यायालय व उसके अधीनस्थ न्यायालयों में निहित होंगी। जिन्हें समय-समय पर कांग्रेस द्वारा स्थापित किया जायेगा। इस प्रकार अमेरिकी संविधान में शासन के तीनों अंगों को पृथक-पृथक कर दिया गया है तथा उन्हें एक-दूसरे से स्वतंत्र रखने की व्यवस्था की गई है।

### *मौलिक अधिकार*

वे अधिकार, जो व्यक्ति के पूर्ण विकास के लिए आवश्यक होते हैं, मौलिक अधिकार कहलाते हैं। इन अधिकारों की गारंटी संविधान द्वारा प्रदान की जाती है।

- भारतीय संविधान में अधिकारों को दो श्रेणियों में रखा जाता है, नागरिकों को दिये जाने वाले अधिकार तथा व्यक्तियों को दिये जाने वाले अधिकार। इन प्रावधानों के अंतर्गत प्रदान किये जाने वाले प्रमुख अधिकार हैं, समानता का अधिकार, स्वतंत्रता का अधिकार जिसमें भाषण देने की स्वतंत्रता, कारोबार करने की स्वतंत्रता आदि शामिल हैं, इसके अलावा शोषण के विरुद्ध अधिकार, धार्मिक स्वतंत्रता का अधिकार, संस्कृति व शिक्षा संबंधी अधिकार तथा संवैधानिक उपचारों का अधिकार प्रदान किये गये हैं।
- रूसी संविधान में भारतीय संविधान द्वारा प्रदान किये जाने वाले अधिकारों के अलावा काम करने का अधिकार, सामाजिक सुरक्षा का अधिकार, विश्राम तथा अवकाश का अधिकार दिये जाने के साथ शरण पाने का अधिकार भी दिया गया है। रूस में नागरिकों को श्रम उपार्जित आय, बचत, निवास, गृह आदि संपत्ति पर पूर्ण अधिकार है।
- जापान में समानता, स्वतंत्रता, भाषण व प्रेस की स्वतंत्रता के अतिरिक्त मतदान का अधिकार, याचिका भेजने का अधिकार, सौदेबाजी का अधिकार तथा कर दंड के निषेध को भी मौलिक अधिकारों की श्रेणी में रखा गया है।
- फ्रांस में मूल अधिकारों का वर्णन नहीं किया गया बल्कि कुछ मौलिक स्वतंत्रताओं का वर्णन किया गया है। फ्रांस का संविधान कहता है कि 'किसी नागरिक को निरकुंश ढंग से बंदी बनाकर नहीं रखा जा सकता' न्यायालय द्वारा संविधान की यह व्यवस्था लागू की जा सकती है।
- चीन में भी संविधान का भाग 3 मूल अधिकारों से संबंधित है, जिसमें चीन के नागरिकों को न्यायिक समानता, राजनीतिक समानता, लेखन, भाषण व संगठन की स्वतंत्रता तथा स्त्रियों को अधिकार, वृद्धावस्था में सहायता के अतिरिक्त शिक्षा, शरण व आपत्तियों के निराकरण का मूल अधिकार प्रदान किया गया है।
- ब्रिटेन में विधि के शासन के अधीन नागरिकों को कुछ प्रमुख अधिकार प्रदान किये गए हैं, जैसे बिना विधि का पालन किये बंदी न बनाया जाना अथवा दंडित न होने का अधिकार, भाषण व सार्वजनिक सभा व उत्सवों में भाग लेने का अधिकार शामिल है।
- अमेरिका में मूल अधिकारों को तीन भागों में विभक्त किया गया है, ये हैं, वैयक्तिक अधिकार, न्यायिक प्रक्रिया संबंधी अधिकार तथा संपत्ति का अधिकार।
- वैयक्तिक अधिकारों में दासता से मुक्ति, विधि के समान संरक्षण, अधिकार अपहरण, देशद्रोह अभियोग, शस्त्र धारण करने का अधिकार, धर्म, भाषण व प्रेस की स्वतंत्रता आदि शामिल है। न्यायिक प्रक्रिया संबंधी अधिकारों में शीघ्र व खुली अदालत में न्याय का अधिकार, कानूनी सहायता तथा अपने विरुद्ध गवाही देने के लिए विवश न किये जाने का अधिकार शामिल है। इसके अलावा बंदी प्रत्यक्षीकरण तथा निष्पक्ष सुनवाई का अधिकार प्रदान किया गया है। संपत्ति के अधिकार के अंतर्गत किसी भी व्यक्ति को उसकी संपत्ति से वंचित नहीं किया जा सकेगा।

### *न्यायिक पुनरावलोकन*

- न्यायिक पुनर्निरीक्षण, जिसकी उत्पत्ति व विकास अमेरिका में हुआ। व्यवस्थापिका द्वारा निर्मित तथा कार्यपालिका द्वारा किये गये कार्यों से संबंधित अपने समक्ष आये मुकदमों में न्यायालय द्वारा उस जांच को कहा जाता है जिसके अंतर्गत वो निर्धारित करते हैं कि, वे कानून अथवा कार्य संविधान द्वारा प्रतिबंधित हैं अथवा नहीं।
- भारत के संविधान में सर्वोच्च न्यायालय के न्यायिक पुनर्निरीक्षण अधिकार का स्पष्ट वर्णन प्राप्त नहीं होता तथापि सर्वोच्च न्यायालय इस शक्ति का यथावसर प्रयोग करता है। उसने कार्यपालिका के उन कार्यों को असंवैधानिक घोषित किया जो संवैधानिक उपबंधों के प्रतिकूल थे और विधायिका द्वारा पारित विधि या संविधान संशोधन को भी संविधान की मूल भावना के विपरीत होने के आधार पर अंसवैधानिक घोषित किया है।
- अमेरिका के संविधान में सर्वोच्च न्यायालय को स्पष्ट रूप से न्यायिक पुनर्निरीक्षण की शक्तियां प्राप्त नहीं थी, परन्तु 1803 में एक विवाद में मुख्य न्यायाधीश ने स्पष्ट किया कि अमेरिका में संविधान ही सर्वोच्च है, यदि व्यवस्थापिका द्वारा पारित कोई कानून संविधान के अनुकूल नहीं है, तब उच्चतम न्यायालय उस कानून को अवैध घोषित कर सकता है। इस शक्ति के कारण सर्वोच्च न्यायालय अब तीसरा सदन बन गया है तथा इसी के परिणामस्वरूप नियंत्रण तथा संतुलन का सिद्धांत क्रियान्वित हो सका है।
- स्विट्जरलैंड में न्यायिक पुनर्निरीक्षण की व्यवस्था है तथापि संघीय न्यायमंडल का यह अधिकार केवल केंटनों (प्रांतों) के कानूनों तक ही सीमित है, वह संघीय व्यवस्थापिका के कानूनों की व्याख्या ही कर सकता है। उनकी संवैधानिक वैधानिकता, अवैधानिकता के विषय में कोई निर्णय नहीं दे सकता।
- सोवियत संघ में सर्वोच्च न्यायालय को न्यायिक पुनर्निरीक्षण का अधिकार नहीं था। सर्वोच्च न्यायालय, सर्वोच्च सोवियत के कानूनों, प्रेसीडियम के अध्यादेशों व मंत्रिमंडल के आदेशों को असंवैधानिकता के आधार पर रद्द नहीं कर सकता था। सोवियत संघ में सर्वोच्च न्यायालय संविधान का संरक्षक न होकर, प्रशासन का एक अंग माना गया था।

**यह भी जाने**

26 नवंबर भारत में 'संविधान दिवस' के रूप में मनाया जाता है। इसकी शुरूआत 2015 से हुई, क्योंकि यह वर्ष संविधान निर्माता डॉ. भीमराव अंबेडकर के 125वें जन्मवर्ष के रूप में मनाया गया था। 26 नवंबर, 1949 को भारतीय संविधान सभा द्वारा संविधान को अपनाया गया और 26 जनवरी, 1950 से इसे लोकतांत्रिक शासन प्रणाली के साथ लागू किया गया था, इसलिए 26 नवंबर का दिन संविधान के महत्व का प्रसार करने हेतु चुना गया।

## *कार्यपालिका*

कार्यपालिका शासन का वह अंग होता है जो अपने अधिकारों का प्रयोग करता है साथ ही इस पर राज्य के प्रशासन की जिम्मेदारी होती है। कार्यपालिका कानूनों का निष्पादन एवं क्रियान्वयन करती है।

शक्तियों के पृथक्करण के सिद्धांत पर आधारित राजनीतिक व्यवस्था में शक्तियों का विभाजन शासन के तीन अंगों में हुआ है- विधायिका, कार्यपालिका एवं न्यायपालिका। इस प्रकार की व्यवस्था में कार्यपालिका को कानून निर्माण एवं इनकी व्याख्या करने की शक्ति नहीं होती। उन्हें विधायिका द्वारा निर्मित एवं न्यायालय द्वारा व्याख्यायित कानूनों का क्रियान्वयन करना होता है। आधुनिक काल में जैसे-जैसे लोकतंत्र एवं संविधानवाद का विकास हुआ, कार्यपालिका की संरचना में परिवर्तन आने लगा। वर्तमान समय में इसके कई रूप दिखाई पड़ते हैं। जिन्हें दो भागों के अंतर्गत समझा जा सकता है-

- ***राजनीतिक कार्यपालिका***- यह कार्यपालिका के सर्वोच्च स्तर पर होती है। जिसे निश्चित अवधि के लिए चुना जाता है। उदाहरण- भारत में केन्द्रीय मंत्रिमंडल एवं अमेरिका में राष्ट्रपति इसी प्रकार चुने जाते हैं। राजनीतिक कार्यपालिका के भी कई प्रकार देखे जा सकते हैं-
  - ***अध्यक्षीय कार्यपालिका***- जहां जनता निर्वाचकगण के माध्यम से कार्यपालिका के प्रमुख का चयन करती है। उदाहरण- अमेरिकी राष्ट्रपति।
  - ***संसदीय कार्यपालिका***- विधायिका के सदस्यों में से ही राजनीतिक कार्यपालिका का चयन होता है। विधायिका में जिस दल के सदस्य बहुमत में होते हैं, वही दल अपनी सरकार बनाता है। सरकार चलाने वाले सदस्यों के समूह को मंत्रिमंडल कहा जाता है। यह प्रणाली भारत एवं इंग्लैंड जैसे देशों में प्रचलित है।
  - ***दोहरी कार्यपालिका***- इसके अंतर्गत, कार्यपालिका की शक्तियां राष्ट्रपति और प्रधानमंत्री में विभाजित होती हैं। राष्ट्रपति का चुनाव अमेरिका की अध्यक्षीय प्रणाली के समान एवं प्रधानमंत्री का चुनाव संसदीय प्रणाली के समान होती है। यह प्रणाली फ्रांस जैसे कुछ देशों में दिखाई पड़ती है।
  - ***बहुल कार्यपालिका***- यह स्विट्जरलैंड जैसे कुछ देशों में प्रचलित है। इसके अंतर्गत, राजनीतिक कार्यपालिका के सभी सदस्य बराबर शक्तियां रखते हैं। सर्वोच्च अधिकारी का पद नाममात्र का होता है।
- ***स्थायी कार्यपालिका***- इसके विपरीत स्थायी कार्यपालिका में वे उच्च पदाधिकारी शामिल होते हैं जो अधिकारिता के अंग होते हैं। उदाहरण- भारत में भारतीय प्रशासनिक सेवा तथा अन्य सिविल सेवा। इसे राजनीतिक कार्यपालिका के दिशा-निर्देशों के अनुसार कार्य करना पड़ता है। यह अधिकारीतंत्र विशेष दक्षता से युक्त होता है।

विश्व के प्रमुख लोकतांत्रिक व्यवस्थाओं वाले देशों की कार्यपालिका का अध्ययन करके उपरोक्त व्यवस्थाओं को समझा जा सकता है-

- **भारत की कार्यपालिका**- इसमें राजनीतिक कार्यपालिका के स्तर पर ब्रिटेन की संसदीय प्रणाली जैसा ढाँचा स्वीकार किया गया है, जिसके अनुसार, लोकसभा में बहुमत प्राप्त दल मंत्रिमण्डल का गठन करता है। मंत्रिमण्डल सामूहिक उत्तरदायित्व के सिद्धांत के अनुसार कार्य करता है। राष्ट्रपति भारतीय कार्यपालिका का औपचारिक प्रधान है, किन्तु सामान्य स्थितियों में उसे मंत्रिमण्डल के निर्देशों के अनुसार ही काम करना होता है। राजनीतिक कार्यपालिका के अलावा, भारत में स्थायी कार्यपालिका के रूप में एक सशक्त नौकरशाही है। इसमें भारतीय प्रशासनिक सेवा जैसी अखिल भारतीय सेवाओं के अधिकारी भी शामिल हैं और भारतीय राजस्व सेवा जैसी केंद्रीय सेवाओं के अधिकारी भी। राज्यों के स्तर पर उनकी अपनी लोक-सेवाएँ भी कार्य करती हैं।
- ***ब्रिटिश कार्यपालिका***- ब्रिटिश कार्यपालिका एक मंत्रिपरिषद के अधीन काम करती है, जिसका अध्यक्ष प्रधानमंत्री होता है। राज मुकुट कॉमन्स सभा में बहुमत प्राप्त दल के नेता को प्रधानमंत्री के रूप में चुनता है। यदि चुनावों में किसी एक दल को स्पष्ट बहुमत न हो तो सर्वाधिक सदस्य संख्या वाले दल के नेता को गठबंधन सरकार बनाने का अवसर दिया जाता है। प्रधानमंत्री की सहायता से अन्य मंत्रियों का चुनाव किया जाता है। ये मिलकर सरकार बनाते हैं और विभिन्न सरकारी विभागों के राजनीतिक प्रमुख के रूप में कार्य करते हैं। लगभग 20 मंत्री कैबिनेट बनाते हैं। यह सरकार तभी तक कार्य करती है, जब तक उसे कॉमन्स सभा का विश्वास हासिल है। अविश्वास प्रस्ताव के माध्यम से सरकार को अपने कार्यकाल की समाप्ति से पहले भी हटाया जा सकता है। यदि यह प्रस्ताव पारित हो जाता है तो मंत्रिपरिषद को इस्तीफा देना होता है। मंत्रिपरिषद के निर्णयों को सिविल सेवा नामक संगठन द्वारा क्रियान्वित किया जाता है।
- ***अमेरिकी कार्यपालिका***- अमेरिकी लोकतंत्र अध्यक्षीय प्रणाली पर आधारित है, इंग्लैंड की संसदीय प्रणाली पर नहीं। अमेरिका का राष्ट्रपति वास्तविक राज्याध्यक्ष होता है, सिर्फ नाममात्र का नहीं। वह कार्यपालिका का प्रमुख होता है। उसका चुनाव 4 वर्षों के लिए होता है तथा अमेरिकी संविधान के अनुसार, कोई भी व्यक्ति अपने जीवनकाल में दो से ज्यादा बार राष्ट्रपति पद के लिए नहीं चुना जाता। राष्ट्रपति का कार्यकाल स्थिर होता है और उसे केवल महाभियोग द्वारा ही कार्यकाल के बीच में हटाया जा सकता है, जो कि लगभग असंभव प्रक्रिया है। महाभियोग देशद्रोह, जघन्य अपराध या भारी भ्रष्टाचार के आरोप में ही चलाया जाता है। संसद के दोनों सदनों द्वारा यह प्रस्ताव पारित होना चाहिए (पहले प्रतिनिधि सभा में फिर सीनेट से)। अमेरिकी राष्ट्रपति का चुनाव एक निर्वाचक मंडल द्वारा होता है। अमेरिकी नागरिक अपने-अपने क्षेत्र से निर्वाचन मंडल के सदस्यों का चुनाव करते हैं और फिर निर्वाचन मंडल के सदस्य राष्ट्रपति का चुनाव करते हैं।

राष्ट्रपति अपने मंत्रिमंडल का निर्माण करने के लिए ब्रिटिश व्यवस्था की तरह विधायिका के सदस्यों में से चयन करने को बाध्य नहीं होता। वह अपनी पसंद के किसी भी व्यक्ति को मंत्री बना सकता है और जब चाहे उसे हटा भी सकता है। ये मंत्री राष्ट्रपति के सहयोगी नहीं सहायक होते हैं। वह संघीय एजेंसियों के प्रमुखों की नियुक्ति भी करता है। मंत्रिमंडल और स्वतंत्र संघीय एजेंसियाँ कांग्रेस (विधायिका) द्वारा निर्मित कानूनों का क्रियान्वयन और प्रशासन के लिए उत्तरदायी होती हैं।

अमेरिकी उपराष्ट्रपति भी कार्यपालिका का अंग होता है, उसका निर्वाचन भी निर्वाचकगण द्वारा होता है। निर्वाचकगण के प्रत्येक सदस्य राष्ट्रपति के साथ एक वोट उपराष्ट्रपति के लिए भी डालते हैं। उपराष्ट्रपति सीनेट की अध्यक्षता करता है। वह राष्ट्रपति पद के कर्तव्यों का भी निर्वाह कर सकता है। जब राष्ट्रपति की मृत्यु होने, त्यागपत्र देने, स्वास्थ्य कारणों से या यदि उसे महाभियोग द्वारा हटा दिया जाए तो उपराष्ट्रपति इसका पद संभालता है।

- ***स्विट्जरलैंड की कार्यपालिका***- स्विट्जरलैंड की कार्यकारी शक्ति एक विशेष समूह के हाथ में होती है, जिसे संघीय परिषद कहते हैं। इस परिषद में 7 सदस्य होते हैं, जिन्हें विधानमंडल के दोनों सदनों के संयुक्त अधिवेशन में 4 वर्षों के लिए चुना जाता है। संघीय परिषद के अध्यक्ष को स्विस परिसंघ का राष्ट्रपति व अन्य सदस्यों को मंत्री कहा जाता है। संघ का राष्ट्रपति सिर्फ सांकेतिक राज्याध्यक्ष होता है, उसकी शक्तियां अन्य सदस्यों के ही बराबर होती हैं। हर वर्ष बाद राष्ट्रपति बदलता है। कार्यपालिका के इसी प्रकार की संरचना को बहुल कार्यपालिका कहा जाता है।

संघीय सभा के सदस्यों का कार्यकाल निश्चित होता है, उन्हें महाभियोग या

अविश्वास प्रस्ताव के माध्यम से नहीं हटाया जा सकता।

संघीय सभा राष्ट्रपति के साथ-साथ उपराष्ट्रपति का भी चुनाव करती है। राष्ट्रपति और उपराष्ट्रपति की स्थिति प्रत्येक वर्ष बदलती रहती है। प्रत्येक सदस्य जो उपराष्ट्रपति बनता है वह राष्ट्रपति बन जाता है। संघीय राष्ट्रपति सभा की बैठकों की अध्यक्षता करता है। यदि कभी संघीय सभा निर्णय करने की स्थिति में न हो तो राष्ट्रपति को निर्णय करने की शक्ति प्राप्त होती है।

- ***फ्रांस की कार्यपालिका***- फ्रांस में एकात्मक शासन प्रणाली है। फ्रांस की कार्यपालिका दोहरी कार्यपालिका पर आधारित है, जिसके अंतर्गत राष्ट्रपति और प्रधानमंत्री दोनों के पास कार्यपालिका की निश्चित शक्तियां होती हैं। राष्ट्रपति का चुनाव जनता प्रत्यक्ष विधि से करती है और प्रधानमंत्री का चुनाव संसद में बहुमत के आधार पर होता है। राष्ट्रपति, ब्रिटिश राजा/ भारतीय राष्ट्रपति की तरह नाममात्र का प्रधान नहीं होता है उसे प्रधानमंत्री के साथ-साथ कई कार्यकारी शक्तियां प्राप्त होती हैं।

फ्रांसीसी शासन व्यवस्था में राजनीतिक कार्यपालिका की शक्तियां संसद की तुलना में काफी ज्यादा हैं। संसद केवल मूल सिद्धांत एवं मार्गदर्शक सिद्धांत ही बना सकती है अन्य क्षेत्रों में सरकार को कानून बनाने की पर्याप्त शक्ति मिली हुई है। कभी-कभी प्रधानमंत्री और राष्ट्रपति भिन्न भिन्न दलों के होते हैं। ऐसी स्थिति में राजनीतिक गतिरोध उत्पन्न हो जाता है जिसे सहचारिता कहते हैं। फ्रांस की चुनाव प्रणाली को 'द्वितीयक पूर्ण बहुमत प्रणाली' या 'पुनर्मतदान प्रणाली' कहते हैं। इसके अंतर्गत पंजीकृत मतदाताओं के कम से कम एक चौथाई मत तथा मतदान में डाले गए कुल मान्य मतों के कम से कम 50% वोट प्राप्त करने होते हैं। यदि पहली बार किसी उम्मीदवार को ऐसा बहुमत प्राप्त नहीं होता है तो पंजीकृत मतदाताओं की कुल संख्या के साढ़े बारह प्रतिशत से ज्यादा वोट जिन उम्मीदवारों को मिलते हैं, उनके बीच पुनः मतदान कराया जाता है। इसमें सर्वाधिक मत प्राप्त करने वाले उम्मीदवार को विजयी घोषित कर दिया जाता है चाहे इसे पूर्ण बहुमत मिला हो या नहीं।

फ्रांस के राष्ट्रपति के चुनाव में यही पद्धति भिन्न तरीके से प्रयोग की जाती है। इसमें यदि पहली बार किसी उम्मीदवार को पूर्ण बहुमत प्राप्त न हो तो सर्वाधिक मत प्राप्त करने वाले दो उम्मीदवारों में पुनः मुकाबला कराया जाता है और सर्वाधिक मत प्राप्त उम्मीदवार राष्ट्रपति चुन लिया जाता है।

फ्रांस का राष्ट्रपति प्रधानमंत्री एवं अन्य मंत्रियों की नियुक्ति करता है। यदि राष्ट्रपति के राजनीतिक दल का संसद में बहुमत होता है तो राष्ट्रपति प्रशासनिक कार्यों में प्रभावी भूमिका निभाता है। वह जिसे चाहे मंत्री बना सकता है। यदि उसके प्रतिद्वंद्वी दल का संसद में बहुमत है तो उसकी भूमिका सीमित हो जाती है। सरकार संसद के प्रति उत्तरदायी होती है। निंदा प्रस्ताव के पारित होने पर सरकार को इस्तीफा देना होता है।

सरकार के मंत्री संसदीय अनुमोदन के बिना किसी विधान (कानून) को पारित नहीं कर सकते। यद्यपि प्रधानमंत्री को नियम बनाने की शक्ति प्राप्त है, लेकिन वह संसदीय प्रभुत्व का उल्लंघन नहीं कर सकता है।

- ***जर्मनी की कार्यपालिका***- यहाँ, राष्ट्रपति जर्मनी का राज्याध्यक्ष होता है, जो नामामात्र का ही प्रधान होता है। वास्तविक शक्तियां चांसलर के हाथ में रहती हैं, जो कि भारतीय प्रधानमंत्री के समतुल्य हैं। चांसलर सरकार के अध्यक्ष की भूमिका निभाता है। संघीय सरकार के अन्य सभी मंत्री चांसलर द्वारा चुने जाते हैं। चांसलर को इसके पद पर रहने के दौरान सामान्यतः हटाया नहीं जा सकता अर्थात् 4 वर्ष की अवधि पूरी होने से पहले इसे हटाया नहीं जा सकता। वह 'रचनात्मक अविश्वास प्रस्ताव' के माध्यम से हटाया जा सकता है। यदि विधायिका के निम्न सदन में चांसलर के विरुद्ध अविश्वास प्रस्ताव लाया जाता है तो उस प्रस्ताव में ही निर्दिष्ट करना होता है कि प्रस्ताव पारित हो जाने की स्थिति में नया चांसलर कौन होगा? यदि सदन प्रस्ताव को बहुमत से स्वीकार कर लेता है तो ही चांसलर पद से हटाया जाता है। इसका लाभ यह है कि सरकार गिरने पर भी जर्मन राजव्यवस्था में अस्थिरता उत्पन्न नहीं होती।

### *न्यायपालिका*

न्यायपालिका शासन का एक अंग है। जिसका प्रमुख कार्य यह है कि विधायिका द्वारा निर्मित कानूनों के अनुसार विभिन्न विवादों का समाधान करे, किन्तु आजकल न्यायपालिका की भूमिका काफी हद तक विधायिका के समान ही होने लगी है। इसका कारण यह है कि, कई कानून इतने जटिल और अस्पष्ट होते हैं कि न्यायपालिका को उनकी मौलिक व्याख्या करनी पड़ती है। ये व्याख्याएं स्वतः कानून का दर्जा प्राप्त कर लेती हैं। जिन्हें न्यायाधीश निर्मित कानून या निर्णय कानून कहते हैं। वर्तमान समय में इन्हीं कानूनों की एक पृथक शाखा के रूप में महत्व दिया जाता है। ध्यातव्य है कि, उच्च स्तर के न्यायालयों द्वारा दिये गये निर्णय निचली अदालतों के लिए पूर्वनिर्णय होते हैं तथा उनके लिए बाद के किसी भी समान मामले में उन पूर्वनिर्णयों को आधार बनाना जरूरी होता है।

- ***भारतीय न्यायपालिका***- भारतीय राजव्यवस्था का ढांचा विधायिका और कार्यपालिका के स्तर पर भले ही संघात्मक हो, परन्तु न्यायपालिका स्वतंत्र एवं तुलनात्मक रूप से अधिक एकात्मक है। यहां केन्द्र और राज्यों के स्तर पर भिन्न-भिन्न न्यायपालिकाएं नहीं हैं तथा राज्यों के उच्च न्यायालय सीधे तौर पर सर्वोच्च न्यायालय के अधीन होते हैं। इसके अलावा, मूल अधिकारों के संरक्षक के तौर पर तथा संविधान के निर्वचन की अंतिम शक्ति रखने के कारण भारतीय न्यायपालिका काफी शक्तिशाली है। भारतीय न्यायपालिका ने प्राकृतिक न्याय के सिद्धांत को पूरी तरह स्वीकार किया है। वह इस मूल सिद्धांत पर कार्य करती है कि "हजार अपराधी भले छूट जाएं, एक भी निरपराध को सजा नहीं मिलनी चाहिए।" प्रत्येक अभियुक्त को अदालत में अपना पक्ष रखने का मौका मिलता है, चाहे उसका कृत्य कितना भी घृणित हो या चाहे उसे सिद्ध करने के लिए कई गवाह मौजूद हों।

मुंबई हमले के अभियुक्त अजमल कसाब पर चलने वाला अत्यंत खर्चीला व अत्यधिक समय लेने वाला मुकदमा यह सिद्ध करने के लिए पर्याप्त है कि भारतीय न्यायव्यवस्था प्राकृतिक न्याय के सिद्धांत को पूरी प्रतिबद्धता से स्वीकार करती है। भूतपूर्व प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी व राजीव गांधी के हत्यारों को अदालत द्वारा अपना पक्ष रखने का पूरा मौका दिया जाना भी इसी बात को प्रमाणित करता है।

- ***इंग्लैण्ड की न्यायपालिका***- यहाँ, न्यायपालिका सामान्यतः कार्यपालिका और विधायिका के हस्तक्षेप से मुक्त है, हालांकि संसदीय प्रणाली के अंतर्गत शक्तियों के पृथक्करण (Separation of Powers) की वैसी स्थिति नहीं है, जैसी संयुक्त राज्य अमेरिका में है। न्यायालय आमतौर पर स्वतंत्र होकर काम करते हैं, किन्तु वे संसद द्वारा पारित विधेयकों का पुनर्निरीक्षण या पुनर्विलोकन (Judicial Review) करने की शक्ति नहीं रखते। वैसे भी, न्यायपालिका का सर्वोच्च स्तर लॉर्ड्स सभा के विधि लॉर्ड्स (Law Lords) में ही है। इस दृष्टि से भी ब्रिटिश संसद न्यायपालिका से बहुत अधिक शक्तिशाली है।

2009 में, इंग्लैंड में सर्वोच्च न्यायालय का गठन किया गया है, इसके 12 न्यायाधीश 'हाउस ऑफ लॉर्ड्स' के विधि लॉर्ड्स (Law Lords) ही हैं। इसलिए इस परिवर्तन से कोई संरचनागत परिवर्तन नहीं हुआ है, अंतर सिर्फ इतना आया है कि अब इंग्लैंड के पास औपचारिक रूप से एक सर्वोच्च न्यायालय हो गया है। यह 'विधि द्वारा स्थापित प्रक्रिया' (Procedure Established by Law) के सिद्धांत के अनुसार कार्य करती है, न कि 'यथोचित विधि प्रक्रिया' (Due Process of Law) के अनुसार। इसका व्यावहारिक अर्थ यह है कि, ब्रिटिश न्यायपालिका संसद द्वारा पारित विधियों का पुनर्विलोकन (Review) सिर्फ इस

आधार पर कर सकती है कि विधि पारित करने के लिए 'वैध प्रक्रिया' का पालन किया गया है या नहीं वह इस आधार पर विधियों का पुनर्विलोकन नहीं कर सकती कि विधि की विषय-वस्तु (Content) अपने आप में उचित है या नहीं।

ब्रिटिश न्यायपालिका 'सकारात्मक विधि' (Positive Law) के सिद्धांत के अनुसार कार्य करती है, उसे यह शक्ति हासिल नहीं है कि वह 'प्राकृतिक विधि' या 'नैसर्गिक विधि' (Nature's Law) के सिद्धांत के अनुसार संसद की शक्तियों को नियंत्रित कर सके। गौरतलब है कि 'सकारात्मक विधि' के अंतर्गत मनुष्यों द्वारा बनाई गई विधि को सर्वोच्च माना जाता है।

'सकारात्मक विधि' की सर्वोच्चता का अर्थ है कि, यदि संसद ने उपर्युक्त प्रक्रिया का पालन करते हुए कोई विधि पारित की है तो न्यायपालिका उसे इस आधार पर खारिज नहीं कर सकती कि वह प्रकृति द्वारा मनुष्यों को दिए गए अधिकारों या प्रकृति के आधारभूत नियमों के खिलाफ है। यह सिद्धांत ब्रिटिश न्यायपालिका को संसद के समक्ष कमजोर साबित करता है।

- ***अमेरिकी न्यायपालिका***- अमेरिकी राजव्यवस्था में सर्वोच्च न्यायालय की भूमिका महत्वपूर्ण है। वर्तमान में इसमें मुख्य न्यायाधीश सहित कुल 9 न्यायाधीश हैं। जिनकी सेवानिवृत्ति का निर्धारण नहीं किया गया है। संघात्मक संविधान के मामले में लिखित संविधान का तथा संविधान के उपबंधों के समुचित निर्वचन का विशेष महत्व होता है, इसलिये स्वभाविक तौर पर सर्वोच्च न्यायालय अत्यन्त शक्तिशाली हो जाता है। अमेरिकी सर्वोच्च न्यायालय अपनी सर्वोच्चता की सिद्धि दो शक्तियों, न्यायिक पुनरीक्षण तथा अधिनिर्णयन द्वारा करता है।

अमेरिकी न्यायपालिका 'यथोचित विधि प्रक्रिया' (Due process of law) के सिद्धांत के अनुसार कार्य करती है, न कि 'विधि द्वारा स्थापित प्रक्रिया' (Procedure established by law) के अनुसार। अमेरिकी संविधान के 5वें तथा 14वें संशोधनों में 'यथोचित विधि प्रक्रिया' (Due process of law) वाक्यांश का प्रयोग किया गया है। इसकी व्याख्या करते हुए अमेरिकी सर्वोच्च न्यायालय ने स्पष्ट किया है कि, यह 'विधि द्वारा स्थापित प्रक्रिया' (Procedure established by law) के ब्रिटिश सिद्धांत से अलग है। इसके अंतर्गत न्यायपालिका संसद द्वारा पारित किसी विधि का पुनर्विलोकन न सिर्फ 'उपयुक्त प्रक्रिया' के आधार पर कर सकती है, बल्कि इस आधार पर भी कर सकती है कि विधि की विषय-वस्तु या अंतर्वस्तु (Content of law) नागरिकों के मूल अधिकारों के खिलाफ तो नहीं है। इस सिद्धांत से भी अमेरिकी न्यायपालिका को काफी ताकत हासिल हुई है। अमेरिकी न्यायपालिका 'प्राकृतिक विधि' या 'नैसर्गिक विधि' (Nature's Law) के सिद्धांत के अनुसार कार्य करती है, वह 'सकारात्मक विधि' (Positive Law) को अंतिम विधि नहीं मानती। इसका अर्थ है कि यदि संसद ने उपयुक्त प्रक्रिया का पालन करते हुए कोई विधि पारित की है तो भी न्यायपालिका उसे इस आधार पर खारिज कर सकती है कि वह प्रकृति द्वारा मनुष्यों को दिए गए अधिकारों या प्रकृति के आधारभूत नियमों के खिलाफ है। यह व्याख्या भी अमेरिकी न्यायपालिका को अत्यधिक शक्ति प्रदान करती है।

- ***स्विट्जरलैंड की न्यायपालिका***- यह संघीय एवं केंटन प्रांत स्तर पर गठित है। संघीय सर्वोच्च न्यायालय स्विट्जरलैंड का उच्च स्तरीय न्यायालय है। यह संघीय स्तर पर न्यायिक कार्यों को करता है। संघीय आपराधिक न्यायालय, संघीय प्रशासनिक न्यायालय एवं संघीय पेटेंट न्यायालय, संघीय स्तर पर अन्य न्यायालय है।
  - ***संघीय सर्वोच्च न्यायालय***- यह स्विट्जरलैंड का उच्च स्तरीय न्यायिक निकाय है। यह उच्च स्तरीय केंटन के न्यायालयों के निर्णयों के विरुद्ध अंतिम अपीलीय न्यायालय है। कानूनों का पुनर्विलोकन एवं नागरिकों के मूल अधिकारों की रक्षा करना इसका अन्य कार्य है।
  - ***संघीय आपराधिक न्यायालय***- अधिकांश आपराधिक मामले केंटन के स्तर पर न्यायालयों द्वारा निपटाए जाते हैं, परन्तु संघीय आपराधिक न्यायालय उन मामलों को देखता है, जो संघीय हितों से संबंधित हों, जैसे- संगठित अपराध, भ्रष्टाचार, धन शोधन आदि।
  - ***संघीय प्रशासनिक न्यायालय***- यह संघ के प्रशासनिक निकायों द्वारा लिए गए निर्णयों के विरुद्ध अपीलों पर सुनवाई करता है।
  - ***संघीय पेटेंट न्यायालय***- यहाँ तकनीकी से संबंधित नवाचारों को पेटेंट के रूप में उचित कानूनी संरक्षण प्राप्त है। यदि कोई विवाद उत्पन्न होता है तो उस पर इस न्यायालय द्वारा विचार किया जायेगा।

- ***जर्मनी की न्यायपालिका***- जर्मनी की न्यायपालिका का कार्य कानूनों की व्याख्या करना एवं लागू करना है। जर्मन सिविल कानून साधारणत: व्यापक कानूनों का संग्रह है। आपराधिक और प्रशासनिक, मामलों में जर्मनी न्यायिक तंत्र 'पूछताछ प्रणाली' का प्रयोग करता है, जिसमें न्यायाधीश स्वत: ही तथ्यों की जांच में सक्रिय भूमिका निभाते हैं। यह प्रणाली परंपरागत रूप से प्रचलित 'विरोधात्मक प्रणाली' से भिन्न है। जहाँ मामले के दोनों पक्ष वकीलों के माध्यम से अपना मामला रखते हैं और न्यायाधीश निष्पक्ष भूमिका में होते हैं।
- ***फ्रांसीसी न्यायपालिका***- फ्रांसीसी न्यायालय दो भाग में विभाजित है- न्यायिक न्यायालय और प्रशासनिक न्यायालय। उच्च स्तरीय न्यायिक न्यायालय के रूप में वहाँ सर्वोच्च न्यायालय मौजूद है जो एक अपीलीय न्यायालय है। जबकि उच्च स्तरीय प्रशासनिक न्यायालय के रूप में राज्यों की परिषद मौजूद है।

फ्रांस की न्यायिक प्रणाली का सबसे विशिष्ट लक्षण वहाँ की संवैधानिक परिषद है। न्यायालय की यह शाखा संसद द्वारा निर्मित कानूनों की समीक्षा करती है। फ्रांस के आम चुनावों का पर्यवेक्षण, जनता द्वारा किसी कानून की संवैधानिकता से संबंधित प्रश्नों का जवाब देना भी इसके अन्य कार्य हैं।

### *विधायिका*

विधायिका का कार्य कानूनों का निर्माण करना है। राजतंत्रीय प्रणाली में यह कार्य आमतौर पर राजा के हाथ में होता था तथा राजा की इच्छाओं को ही कानून का दर्जा प्राप्त था। धर्मतंत्रीय शासन प्रणाली (Theocratic System) में धार्मिक ग्रंथों को ही कानून तथा धर्म के सर्वोच्च पदाधिकारियों को कानूनों का अंतिम व्याख्याकार माना जाता था।

आधुनिक काल में, लोकतंत्र की स्थापना के बाद माना गया है कि कानूनों का निर्माण जनता की इच्छाओं के अनुसार होना चाहिए। स्विट्जरलैंड जैसे कुछ देशों में कोशिश की जाती है कि जनता की इच्छाओं को सीधे तौर पर ही जान लिया जाये। इसके लिए वहां कुछ विशेष व्यवस्थाएं प्रचलित हैं, जैसे- पहल (Initiative) तथा जनमतसंग्रह (Referendum)। किन्तु, सामान्यत: जनसंख्या तथा क्षेत्रफल की अधिकता के कारण व्याहारिक तौर पर यह संभव नहीं होता कि सारी जनता की इच्छा जानी जा सके। इसलिए, आजकल अधिकांश देशों में प्रतिनिधि लोकतंत्र (Representative Democracy) के माध्यम से विधायिका का गठन किया जाता है। इसके अंतर्गत, एक क्षेत्र विशेष का जनसमुदाय अपने एक प्रतिनिधि को चुनकर विधायिका या विधानमंडल में भेजता है तथा सभी क्षेत्रों से चुनकर आये ऐसे प्रतिनिधि आपसी सहमति से कानूनों का निर्माण करते हैं।

वर्तमान राजनीतिक व्यवस्थाओं में विधायिका आमतौर पर दो सदनों (Two houses) से मिलकर बनती है, जैसे भारत में लोकसभा और राज्यसभा।

**जनमत संग्रह**

इसके शब्दिक अर्थ में, 'जनमत संग्रह' शब्द का अर्थ है 'संदर्भित होना चाहिए'। इसके द्वारा मताधिकार प्राप्त नागरिक किसी प्रस्तावित या पहले से पारित विधान पर अपना मत देते हैं कि वह 'अनुमोदित है या अस्वीकार'। जनमत संग्रह मूल रूप से नकारात्मक कार्यवाही का एक साधन है। जनमत संग्रह दो प्रकार के होते हैं- (1) अनिवार्य (2) वैकल्पिक।

अनिवार्य जनमत संग्रह के मामले में विधायिका द्वारा पारित विधेयक तब तक कानून नहीं बन सकता, जब तक इसे जनमत संग्रह में लोगों द्वारा अनुमोदित नहीं किया जाता है। वहीं वैकल्पिक जनमत संग्रह में मतदाताओं की निर्दिष्ट संख्या द्वारा मांग किये जाने पर लोगों को संदर्भित किया जाता है।

**पहल**

पहल का साधन एक सकारात्मक उपकरण है, जिसके तहत मतदाताओं का एक हिस्सा कानून के लिए एक प्रस्ताव लाता है। जो विधायिका द्वारा बाद में अनुमोदित हो सकता है अथवा अस्वीकार किया जाता है।

- ***भारतीय विधायिका (Indian Legislature)-*** एक संघात्मक ढांचे (Federal Structure) पर आधारित है। केन्द्र और विभिन्न राज्यों की विधायिकाएं संविधान में निर्दिष्ट अपने-अपने क्षेत्रों के लिए विधान बनाती हैं। केन्द्रीय विधायिका या संसद (Parliament) द्विसदनीय (Bicameral) है। प्रचलित भाषा में, इसके दो सदनों में से 'लोकसभा' को निचला सदन तथा 'राज्यसभा' को उच्च सदन कहते हैं। (हालांकि संविधान में इस शब्दावली का प्रयोग नहीं किया गया है।) 'राज्यसभा' का गठन कुछ हद तक अमेरिकी सीनेट की तरह राज्यों को प्रतिनिधित्व देने के लिए और कुछ हद तक ब्रिटेन के 'हाउस ऑफ लॉर्ड्स' की तरह गणमान्य नागरिकों को विधायिका का हिस्सा बनाने के लिए किया गया। राज्यों या प्रांतों की विधायिकाएं आमतौर पर एकसदनीय (Unicameral) हैं। इस सदन को 'विधानसभा' कहते हैं। संविधान में व्यवस्था है कि यदि किसी राज्य विशेष में जरूरत महसूस की जाए तो दूसरे सदन के तौर पर 'विधान परिषद' की स्थापना की जा सकती है। विधायिका के एक अंग के रूप में भारतीय राष्ट्रपति संसद के दोनों सदनों द्वारा पारित विधेयकों (Bills) पर अपनी सहमति प्रदान करता है।
- ***इंग्लैंड की विधायिका (Legislature of England)-*** इंग्लैंड की विधायिका दो सदनों से मिलकर बनी होती है, कॉमन्स सभा तथा लार्ड्स सभा। कॉमन्स सभा (House of Commons) कहने को भले ही निचला सदन हो, शक्तियों की दृष्टि से यह लॉर्ड्स सभा से बहुत आगे है। यह सदन इंग्लैंड के संबंध में सिद्धांतत: ऐसा सब कुछ कर सकता है जो प्राकृतिक दृष्टि से असंभव न हो। कॉमन्स सभा के सदस्यों की वर्तमान संख्या 650 है। ये सभी सदस्य प्रत्यक्ष चुनाव (Direct Election) के माध्यम से इस सदन में आते हैं। इनका कार्यकाल 5 वर्षों का होता है। विधेयकों (Bills) को पारित करने की दृष्टि से कॉमन्स सभा लॉर्ड्स सभा से बहुत अधिक शक्तिशाली है, क्योंकि धन विधेयक (Money Bills) तो सिर्फ इसी में शुरू हो सकते हैं शेष विधेयकों में से भी महत्वपूर्ण विधेयक इसी में शुरू होते हैं। लॉर्ड्स सभा की शक्ति सिर्फ औपचारिक किस्म की है, क्योंकि कॉमन्स सभा यदि किसी विधेयक को एक वर्ष में दो बार पारित कर देती है तो वह कानून बन जाता है, चाहे लॉर्ड्स सभा उसके पक्ष में न हो। संसद का दूसरा सदन लॉर्ड्स सभा (House of Lords) है, जिसे उच्च सदन कहा जाता है। ध्यातव्य है कि एकात्मक (Unitary) शासन प्रणाली में वस्तुत: दूसरे सदन की जरूरत नहीं होती, किन्तु इंग्लैंड में कुछ कारणों से यह सदन चला आ रहा है। इसके सदस्य जनसाधारण द्वारा निर्वाचित नहीं होते। इसमें वे लोग शामिल हैं, जिन्हें या तो वंशानुगत रूप से 'लॉर्ड' की पद्वी मिली हुई है, या वे पुरोहित वर्ग (Clergy) के प्रतिष्ठित सदस्य होने के कारण इसमें शामिल किये गए हैं, या फिर अपनी विशेष योग्यताओं आदि के कारण उन्हें लॉर्ड्स नियुक्ति आयोग (Lords Appointment Commission) ने जीवन भर के लिए लॉर्ड्स सभा में मनोनीत कर दिया है। 1999 ई. के बाद से लेबर पार्टी के प्रयासों के कारण वंशानुगत रूप से लॉर्ड की पद्वी दिये जाने की परंपरा बंद कर दी गई है और अब 100 से भी कम ऐसे सदस्य रह गए हैं, जो वंशानुगत रूप से इस सभा में हैं।

लॉर्ड्स सभा के सदस्यों की संख्या निश्चित नहीं है। आजकल इनकी संख्या 800 के आसपास (776) है हालांकि कभी-कभी यह 1200 तक भी हो जाती है। इसके पुरुष और महिला सदस्यों को सम्मान देने के लिए उनके नाम से पूर्व क्रमश: 'लॉर्ड' तथा 'लेडी' शब्दों का प्रयोग किया जाता है। लॉर्ड्स सभा के प्रमुख को लॉर्ड चांसलर (Lord Chancellor) कहा जाता है। पुरोहित वर्ग (Clergy) से जुड़े लॉर्ड्स को 'लॉर्ड स्पिरिचुअल' (Lord Spititual) कहा जाता है जबकि शेष को 'लॉर्ड टेम्पोरल' (Lord Temporal) कहा जाता है लॉर्ड्स सभा की एक विशेष बात यह भी है कि इसमें 12 विधि लॉर्ड्स (Law lords) शामिल होते हैं, जो कानूनी क्षेत्र के विशेषज्ञ होते हैं। इन्हें आजीवन नियुक्ति प्रदान की जाती है और इनकी भूमिका तब अत्यंत महत्वपूर्ण हो जाती है, जब लॉर्ड्स सभा इंग्लैंड के सर्वोच्च न्यायाधिकरण (Highest Tribunal) तथा अंतिम अपील न्यायालय (Final court of appeal) के रूप में कार्य करती है। जब लॉर्ड्स सभा उच्चतम न्यायालय (Highest Court) के तौर पर काम करती है, तब उसमें लॉर्ड चांसलर के अलावा सिर्फ विधि लॉर्ड्स ही उपस्थित होते हैं। विधि लॉर्ड्स 75 वर्ष की उम्र तक विधि लॉर्ड्स रहते हैं, फिर वे विधि लॉर्ड्स नहीं रहते, किन्तु अन्य लॉर्ड्स की तरह आजीवन लॉर्ड्स सभा में बने रहते हैं।

ध्यातव्य है कि, सामान्यत: लॉर्ड्स सभा के सदस्य राजनीति में भाग नहीं ले सकते। ऐसे बहुत कम ही उदाहरण हुए हैं कि लॉर्ड्स सभा के सदस्यों ने राजनीतिक पद संभाले हों।

लॉर्ड्स सभा पर यह आक्षेप किया जाता है कि, वह गैर-लोकतांत्रिक (Non Democratic) सदन है और अमीर वर्ग तथा रूढ़िवादियों (Conservatives) का गढ़ है।

- ***अमेरिकी विधायिका (American Legislature)-*** अमेरिकी विधायिका (American Legislature) को कांग्रेस कहा जाता है। चूंकि अमेरिका संघीय प्रणाली (Federal Structure) पर आधारित है, इसलिए स्वाभाविक तौर पर वहां का विधानमंडल द्विसदनीय (Bicameral) है। इनमें से पहला सदन 'प्रतिनिधि सभा' (House of Representative) है जिसे निचला सदन (Lower House) भी कहा जाता है, दूसरा सदन सीनेट (Senate) है जिसे उच्च सदन (Upper House) भी कहा जाता है।

प्रतिनिधि सभा (House of Representative) में 435 सदस्य होते हैं, जो पूरे देश की जनता द्वारा चुने जाते हैं। इनके निर्वाचन क्षेत्र जनसंख्या के आधार पर तय होते हैं, इसलिए स्वाभाविक है कि प्रत्येक राज्य से आने वाले प्रतिनिधियों की संख्या असमान होती है। यह आवश्यक है कि, चुनाव लड़ने वाला उम्मीदवार उसी निर्वाचन क्षेत्र (Constituency) का निवासी होना चाहिए। इस नियम के कारण कभी-कभी कुछ प्रतिभाशाली लोग राजनीतिक अवसरों से वंचित हो जाते हैं किन्तु इससे लोकतंत्र की भावना को मजबूती मिलती है। प्रतिनिधि सभा के सदस्यों का निर्वाचन दो वर्षों के लिए होता है और इस अवधि को किसी भी तरह बढ़ाया या घटाया नहीं जा सकता।

अमेरिकी कांग्रेस के दूसरे सदन 'सीनेट' (Senate) का ढांचा संघात्मक शासन प्रणाली की आवश्यकताओं के अनुरूप है। प्रत्येक राज्य को सीनेट में दो प्रतिनिधि भेजने का अधिकार है, चाहे जनसंख्या या क्षेत्र की दृष्टि से राज्य का आकार कुछ भी हो। चूंकि अभी संयुक्त राज्य अमेरिका में 50 राज्य हैं, इसलिए सीनेट में 100 सदस्य होते हैं, इन सदस्यों का निर्वाचन आरंभ में राज्यों के

विधानमंडलों द्वारा होता था, किंतु 1913 ई. के बाद से राज्य की जनता इनका प्रत्यक्ष चुनाव (Direct Election) करती है। सीनेट के प्रत्येक सदस्य को 6 वर्षों के लिए चुना जाता है। प्रत्येक 2 वर्षों के बाद सीनेट के एक तिहाई सदस्य सेवानिवृत्त हो जाते हैं। इस प्रकार पूरी सीनेट कभी भी भंग नहीं होती। यही कारण है कि, इसे स्थायी सदन (Permanent House) भी कहा जाता है।

- ***स्विट्जरलैंड की विधायिका (Legislature of Switzerland)***- संघ के स्तर पर संघीय सभा (Federal Assembly) विधायिका (Legislature) का कार्य करती है। संघात्मक ढांचे के अनुरूप इसके दो सदन हैं। निचले सदन को राष्ट्रीय परिषद (National Council) कहा जाता है। जबकि उच्च सदन को राज्य परिषद (Council of States) कहते हैं। निचले सदन अर्थात् राष्ट्रीय परिषद में 200 सदस्य होते हैं जो सार्वजनिक वयस्क मताधिकार (Universal Adult Suffrage) के आधार पर चुने जाते हैं। यह चुनाव आनुपातिक प्रतिनिधित्व (Proportional Representation) के अनुसार दलीय सूची प्रणाली (Party List System) के आधार पर आयोजित होता है। इन सांसदों का चयन 4 वर्षों के लिए होता है। उच्च सदन अर्थात् राज्य परिषद में कुल 46 सदस्य होते हैं, जिनमें से प्रत्येक केन्टन से दो तथा प्रत्येक अर्द्ध-केन्टन से एक सदस्य आता है।
- ***जर्मनी की विधायिका (Legislature of Germany)***-जर्मनी की 'संघीय विधायिका' (Federal Legislature) के दो सदन हैं- निम्न सदन (Lower House) तथा उच्च सदन (Upper House)। निम्न सदन के सदस्यों का निर्वाचन प्रत्यक्ष रीति (Direct Method) से जबकि उच्च सदन के सदस्यों का निर्वाचन अप्रत्यक्ष रीति (Indirect Method) से होता है। निम्न सदन उच्च सदन की तुलना में काफी ज्यादा शक्तिशाली है, हालांकि उच्च सदन को विधेयकों (Bills) के मामले में निषेधाधिकार (Veto) की व्यापक शक्ति प्राप्त है, जो भारतीय राज्यसभा से काफी ज्यादा है।

जर्मन संघ के निम्न सदन के चुनाव एक विशेष रीति से होते हैं, जिसे 'दो वोट मतदान प्रक्रिया' (Two vote ballot procedure) कहते हैं। इस व्यवस्था के अंतर्गत, प्रत्येक मतदाता के दो वोट होते हैं। पहला वोट स्थानीय जिले से एक सदस्य को निर्वाचित करने के लिए होता है और सर्वाधिक मत प्राप्त करने वाले उम्मीदवार को निर्वाचित माना जाता है। दूसरा वोट मतदाता की पंसद के दल के लिए होता है। यह वोट सूची प्रणाली (List System) के लक्षणों से संबंधित है। सदन के आधे स्थान तो पहले वोट से भर दिये जाते हैं किन्तु शेष आधे स्थान दलीय सूची (Party List) के आधार पर भरे जाते हैं। इससे लाभ यह होता है कि, यदि किसी दल को बहुत सारे चुनाव क्षेत्रों में अच्छी संख्या में मत प्राप्त होते हैं, किन्तु वे मत चुनाव जीतने के लिए पर्याप्त नहीं होते तो उस दल को मतदाताओं की पंसद के समानुपातिक (Proportional) कुछ स्थान हासिल हो जाते हैं।

इस प्रकार विभिन्न संविधानों की तुलना करने पर हमें उनमें कुछ समानताएं तो कुछ असमानताएं दृष्टिगोचर होती हैं। इन परिवर्तनों को स्थानीय आवश्यकताओं के संदर्भ में समझा जाना चाहिए, विभिन्न देशों ने अपनी स्थानीय आवश्यकताओं के अनुसार उचित शासन पद्धति, शासन के विभिन्न अंगों की शक्तियों और उत्तरदायित्वों का निर्धारण किया जो उनके इतिहास, परिस्थिति इत्यादि को प्रदर्शित करती हैं। इसी कारणवश विभिन्न संविधानों में हमें विविधता नजर आती है।

# भारत में संवैधानिक विकास एवं भारतीय संविधान
# (Constitutional Development in India & Indian Constitution)

## भारत में संवैधानिक विकास
## (Constitutional Development in India)

भारत में संविधान का निर्माण यद्यपि संविधान सभा द्वारा किया गया तथापि यह संविधान ब्रिटिश काल में निर्मित विभिन्न कानूनों के उद्विकासीय संदर्भ पर आधारित था। संविधान सभा ने पूर्व के अधिनियम व कानूनों से प्रेरणा लेते हुए भारत के अनुकूल इसका परिमार्जन करते हुए संविधान का निर्माण किया है। ब्रिटिश शासनकाल में भारत को नियमित करने के लिये लाये गए विभिन्न कानून ही भारतीय संविधान के आधार बने हैं। जिनका वर्णन निम्नलिखित है–

### *1773 का अधिनियम ( रेग्युलेटिंग एक्ट )*

इस अधिनियम द्वारा कम्पनी के डायरेक्टर्स के लिए राजस्व संबंधित सभी मामलों तथा दीवानी एवं सैन्य प्रशासन के संबंध में किये गये सभी प्रकार के कार्यों से ब्रिटिश सरकार को अवगत कराना आवश्यक कर दिया गया तथा इसके तहत कंपनी के कर्मचारियों का निजी व्यापार करना और भारतीय लोगों से उपहार व रिश्वत लेना प्रतिबंधित कर दिया गया।

इस अधिनियम द्वारा बंगाल (कलकत्ता) में (1774 में) एक उच्चतम न्यायालय (सुप्रीम कोर्ट) की स्थापना की गई, जिसको प्राथमिक तथा अपीलीय अधिकार प्राप्त थे।

इस अधिनियम के अंतर्गत, बंगाल में एक प्रशासक मंडल गठित किया गया, जिसमें गवर्नर-जनरल तथा चार सदस्य नियुक्त किये गये। पाँच वर्षीय कार्यकाल वाले ये सदस्य, नागरिक तथा सैन्य प्रशासन से संबंधित थे। इस मंडल में निर्णय बहुमत के आधार पर लिये जाते थे। इनको कोर्ट ऑफ डायरेक्टर्स की सिफारिश पर केवल ब्रिटिश सम्राट द्वारा ही हटाया जा सकता था।

कानून बनाने का अधिकार गवर्नर-जनरल तथा उसकी परिषद को दे दिया गया। किंतु इन कानूनों को लागू करने से पूर्व भारत सचिव से अनुमति प्राप्त करना अनिवार्य था। बंगाल के गवर्नर को अब समस्त अंग्रेजी क्षेत्रों का गवर्नर कहा गया। सपरिषद गवर्नर-जनरल को बंगाल में फोर्ट विलियम की प्रेसीडेंसी को असैनिक तथा सैनिक शासन का अधिकार दिया गया। कुछ विशेष मामलों में उसे बंबई तथा मद्रास की प्रेसीडेंसियों का अधीक्षण भी करना था।

### *1784 का पिट्स इण्डिया अधिनियम*

1773 के रेग्युलेटिंग एक्ट की कमियों को दूर करने के लिए पारित इस अधिनियम द्वारा 6 कमिश्नरों के एक नियंत्रण बोर्ड की स्थापना की गई, जिसे भारत में अंग्रेज अधिकृत क्षेत्र पर पूरा अधिकार दिया गया। इसे 'बोर्ड ऑफ कंट्रोल' के नाम से जाना जाता था। इसके सदस्यों की नियुक्ति ब्रिटेन के सम्राट द्वारा की जाती थी।

इससे बंबई तथा मद्रास के गवर्नर पूर्णरूपेण गवर्नर-जनरल के अधीन कर दिये गए। भारत में कम्पनी के अधिकृत प्रदेशों को पहली बार नया नाम 'ब्रिटिश अधिकृत भारतीय प्रदेश' दिया गया। देशी राजाओं से युद्ध तथा संधि से पहले गवर्नर-जनरल का कम्पनी के डायरेक्टरों से स्वीकृति लेना अनिवार्य कर दिया गया।

इस अधिनियम के अंतर्गत, भारत में अंग्रेज अधिकारियों के ऊपर मुकदमा चलाने के लिए इंग्लैण्ड में एक न्यायालय की स्थापना का प्रावधान किया गया।

### *1786 का अधिनियम*

इस अधिनियम के द्वारा, गवर्नर-जनरल को मुख्य सेनापति की शक्तियां भी मिल गई तथा गवर्नर-जनरल को विशेष परिस्थितियों में अपनी परिषद के निर्णयों को रद्द करने तथा अपने निर्णय लागू करने का अधिकार दे दिया गया।

### *1793 का चार्टर अधिनियम*

इस अधिनियम के द्वारा, कम्पनी के व्यापारिक अधिकारों को अगले 20 वर्षों के लिए और आगे बढ़ा दिया गया। गवर्नर-जनरल एवं गवर्नरों की परिषद के सदस्यों की योग्यता हेतु इस शर्त का प्रावधान किया गया कि सदस्य को कम-से-कम 12 वर्षों तक भारत में रहने का अनुभव हो।

विगत शासकों के व्यक्तिगत नियमों के स्थान पर ब्रिटिश भारत में लिखित विधि-विधानों द्वारा प्रशासन की आधारशिला रखी गई, नियमों तथा लिखित विधियों की व्याख्या न्यायालय द्वारा की जानी थी।

### *1813 का चार्टर अधिनियम*

1813 के चार्टर अधिनियम के प्रावधानों के अनुसार, कम्पनी का भारतीय व्यापार पर एकाधिकार समाप्त कर दिया गया, यद्यपि उसका चीन से व्यापार एवं चाय के व्यापार पर अधिकार बना रहा तथा कम्पनी को भारतीय राजस्व से 10.5 प्रतिशत लाभांश दिए जाने की व्यवस्था की गई।

कम्पनी को अगले 20 वर्षों के लिये भारतीय प्रदेशों तथा राजस्व पर नियंत्रण का अधिकार दे दिया गया। किंतु स्पष्ट कर दिया गया कि, इससे इन प्रदेशों में क्राउन के प्रभुत्व पर कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा। नियंत्रण बोर्ड की शक्ति को परिभाषित करते हुए उनका विस्तार भी कर दिया गया।

ईसाई धर्म प्रचारकों को भारत में धर्म-प्रचार के लिये आने की सुविधा प्राप्त हो गई। ब्रिटिश व्यापारियों तथा इंजीनियरों को भारत आने तथा यहाँ बसने की अनुमति प्रदान कर दी गई, लेकिन इसके लिये उनका संचालन मंडल या नियंत्रण बोर्ड से लाइसेंस लेना आवश्यक था।

### *1833 का चार्टर अधिनियम*

इस अधिनियम के द्वारा, चाय का व्यापार तथा चीन के साथ व्यापार करने संबंधी कम्पनी के अधिकार को समाप्त करने का प्रावधान किया गया अर्थात कंपनी के व्यापारिक अधिकार पूर्णत: समाप्त कर दिये गये।

बंगाल के गवर्नर जनरल को 'भारत का गवर्नर जनरल' कहा जाने लगा तथा गवर्नर जनरल को सभी नागरिक व सैन्य शक्तियां प्रदान की गई। मद्रास और बंबई के गवर्नर की कानून बनाने की शक्ति समाप्त कर दी गई तथा भारत के गवर्नर जनरल को पूरे ब्रिटिश भारत में विधि निर्माण का एकाधिकार प्रदान किया गया। इसके अंतर्गत बनाये गये कानूनों को 'एक्ट या अधिनियम' कहा गया। भारत का प्रथम गवर्नर जनरल लॉर्ड विलियम बैंटिक बना। इस अधिनियम द्वारा स्पष्ट कर दिया गया कि कम्पनी के प्रदेशों में रहने वाले किसी भारतीय को केवल धर्म, वंश, रंग या जन्म स्थान इत्यादि के आधार पर कम्पनी के किसी पद से वह जिसके योग्य हो, वंचित नहीं किया जाएगा।

इस एक्ट के तहत, सिविल सेवकों के चयन के लिए खुली प्रतियोगिता के आयोजन का प्रयास किया गया। हालांकि कोर्ट ऑफ डायरेक्टर्स के विरोध के कारण यह प्रावधान लागू नहीं हो सका। भारतीय कानूनों का वर्गीकरण किया गया व इस कार्य

के लिए 'लॉर्ड मैकाले' की अध्यक्षता में प्रथम 'विधि आयोग' का गठन किया गया। भारत में दास-प्रथा को गैर-कानूनी घोषित कर दिया गया तथा गवर्नर-जनरल को निर्देश दिया गया कि वह भारत से दास-प्रथा को समाप्त करने के लिए आवश्यक कदम उठाये जिसके अनुसार, 1843 में दास प्रथा उन्मूलन किया गया। भारत में ब्रिटिश राज्य के दौरान संविधान निर्माण के प्रथम संकेत इस एक्ट में मिलते हैं।

### *1853 का चार्टर अधिनियम*

इस अधिनियम के द्वारा, गवर्नर जनरल की कार्यकारिणी परिषद के 'कानूनी सदस्य' को परिषद का पूर्ण सदस्य बना दिया गया। पहली बार गवर्नर जनरल की परिषद के विधायी एवं प्रशासनिक कार्यों को अलग कर दिया। जिसके कारण, गवर्नर जनरल के लिए नई विधान परिषद का गठन हुआ, इसके तहत परिषद में छह नए पार्षद और जोड़े गए। इस परिषद ने कार्य की वही प्रक्रिया अपनाई जो ब्रिटिश संसद में अपनाई जाती थी। इसके द्वारा भारत की केन्द्रीय व्यवस्था में सर्वप्रथम 'क्षेत्रीय प्रतिनिधित्व के सिद्धांत' को प्रतिपादित किया गया।
इस अधिनियम के द्वारा, सिविल सेवकों के चयन एवं भर्ती हेतु खुली प्रतियोगिता की व्यवस्था का शुभारंभ किया गया, इस प्रकार यह सेवा भारतीयों के लिए खोल दी गई और इसके लिए 1854 में मैकाले समिति को नियुक्त किया गया। इसके द्वारा भारतीय क्षेत्र को इंग्लैंड राजशाही के विश्वास के तहत कब्जे में रखने का अधिकार दिया गया। कम्पनी के भारतीय प्रदेशों को 'जब तक संसद चाहे' तब तक के लिये कंपनी के अधीन रखने की अनुमति दे दी गई।

### *1858 का चार्टर अधिनियम*

1857 की क्रांति ने शासन की असंतोषजनक नीतियां उजागर कर दी थीं जिससे ब्रिटिश संसद को, कम्पनी के शासन को अपने हाथ में लेने का बहाना मिल गया। 1858 के भारत शासन अधिनियम द्वारा भारत का शासन ब्रिटेन की संसद को दे दिया गया। इस अधिनियम से नियंत्रण बोर्ड और निदेशक कोर्ट समाप्त कर भारत में शासन की द्वैध प्रणाली समाप्त कर दी गई।
इस अधिनियम के द्वारा, प्रावधान किया गया कि, अब भारत का शासन, ब्रिटिश साम्राज्ञी की ओर से भारत राज्य सचिव को चलाना था, जिसकी सहायता के लिए 15 सदस्यीय 'भारत परिषद' का गठन किया गया। अब भारत के शासन से संबंधित सभी कानूनों एवं कार्यवाहियों पर भारत राज्य सचिव की स्वीकृति अनिवार्य कर दी गई। भारत परिषद के 15 सदस्यों में से 7 सदस्यों की नियुक्ति का अधिकार सम्राट को तथा शेष सदस्यों के चयन का अधिकार कम्पनी के डायरेक्टर्स को दे दिया गया। अखिल भारतीय सेवाओं तथा अर्थव्यवस्था से संबंधित मसलों पर भारत राज्य सचिव, भारत परिषद की राय मानने को बाध्य था और भारत के गवर्नर-जनरल को भारत राज्य सचिव की आज्ञा के अनुसार कार्य करने के लिए बाध्य कर दिया गया। भारत राज्य सचिव की परिषद एक निगमित निकाय थी, जिसे भारत और इंग्लैंड में मुकदमा करने का अधिकार था। 1858 के कानून का उद्देश्य, प्रशासनिक मशीनरी में सुधार था, जिसके माध्यम से इंग्लैंड में भारतीय सरकार का अधीक्षण और उसका नियंत्रण हो सकता था।
इस अधिनियम के अनुसार, गवर्नर-जनरल भारत में क्राउन के प्रतिनिधि के रूप में कार्य करने लगा तथा उसे 'वायसराय' की उपाधि दी गई। लॉर्ड केनिंग भारत के प्रथम वायसराय बने। अब संरक्षण ताज, सपरिषद भारत राज्य सचिव तथा भारतीय अधिकारियों में बँट गया।

### *भारतीय परिषद अधिनियम, 1861*

भारतीय परिषद अधिनियम, 1861 भारत के संवैधानिक इतिहास में एक महत्वपूर्ण घटना है, क्योंकि इसके द्वारा भारत सरकार की मंत्रिमंडलीय व्यवस्था की नींव रखी गई थी। इस अधिनियम में यह उपबंध किया गया कि, वायसराय की कार्यकारी परिषद, जो अभी तक अनन्य रूप से सरकारी अधिकारियों का एक समूह थी। वह अब विधान परिषद के रूप में विधायी कार्य करेगी, इसमें न्यूनतम 6 और अधिकतम 12 अतिरिक्त मनोनीत सदस्यों का प्रावधान किया गया था। उनमें कम से कम आधे सदस्यों का गैर-सरकारी होना आवश्यक था, किन्तु इनकी शक्ति विधि निर्माण तक ही सीमित होती थी। ये सदस्य किसी प्रकार के प्रशासनिक कार्यों की आलोचना का अधिकार नहीं रखते थे।
1862 में लॉर्ड केनिंग ने तीन भारतीय, बनारस के राजा, पटियाला के महाराजा और सर दिनकर राव को विधान परिषद में मनोनीत किया। वायसराय को विधान सभा में भारतीयों के नाम निर्दिष्ट करने की शक्ति प्रदान की गई थी। यह राज्य सचिव के नियंत्रण तथा निरीक्षण में कार्य करती थी। वायसराय को कुछ विशेषाधिकार तथा आपात स्थिति में अध्यादेश जारी करने का अधिकार दिया गया। जिसके तहत लॉर्ड केनिंग ने भारतीय शासन में पहली बार संविभागीय प्रणाली की शुरूआत की तथा बंबई और मद्रास प्रेसिडेंसियों को कानून बनाने की शक्ति वापस देकर विकेन्द्रीकरण की प्रक्रिया की शुरूआत की गई।

### *भारतीय परिषद अधिनियम, 1892*

इस अधिनियम के प्रावधान के अनुसार, भारत सरकार की विधि निर्मात्री संस्था में अतिरिक्त सदस्य 10 से 16 तक किए जाने की व्यवस्था की गई, जिसमें कम-से-कम 40 प्रतिशत सदस्यों का गैर-सरकारी होना जरूरी था। साथ ही विधि निर्मात्री संस्था को प्रश्न पूछने तथा बजट पर बहस करने का अधिकार सीमित रूप में प्राप्त हो गया। केंद्रीय एवं प्रांतीय विधान परिषद में गैर-सरकारी सदस्यों की नियुक्ति के अप्रत्यक्ष एवं सीमित चुनावी प्रावधान किये गए। हालांकि 1892 के अधिनियम में 'चुनाव' शब्द का प्रयोग नहीं हुआ था। इन सदस्यों के नामांकन के लिए वायसराय को शक्तियाँ प्रदान की गई थीं। भारतीय परिषद अधिनियम, 1892, भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के 1889 से 1891 तक के अधिवेशनों में स्वीकार किये गए प्रस्तावों से प्रभावित होकर पारित किया गया था।

### *भारतीय परिषद अधिनियम, 1909 ( मॉर्ले-मिंटो सुधार )*

भारत के तत्कालीन राज्य सचिव लॉर्ड मॉर्ले और वायसराय लॉर्ड मिंटो के नाम से 1909 के भारतीय परिषद अधिनियम को जाना जाता है, इस अधिनियम के द्वारा केंद्रीय एवं प्रांतीय विधान परिषदों में निर्वाचित सदस्यों की संख्या में वृद्धि का प्रावधान किया गया। केंद्रीय परिषद में इनकी संख्या 16 से बढ़ाकर 60 कर दी गई और प्रांतीय विधान परिषदों में गैर-सरकारी बहुमत स्थापित किया गया। किंतु गैर-सरकारी सदस्यों में नामांकित एवं बिना चुने सदस्यों की संख्या अधिक होने के कारण निर्वाचित सदस्यों की तुलना में अभी भी उनकी संख्या अधिक बनी रहीं। स्थानीय निकायों से निर्वाचन परिषद का गठन होता था। ये प्रांतीय विधान परिषदों के सदस्यों का निर्वाचन करती थीं। प्रांतीय विधान परिषदों के सदस्य केंद्रीय व्यवस्थापिका के सदस्यों का निर्वाचन करते थे। इस प्रकार सभी निर्वाचित सदस्य अप्रत्यक्ष रूप से चुने जाते थे।
पहली बार पृथक निर्वाचन व्यवस्था का प्रारम्भ किया गया। साथ ही मुसलमानों को प्रतिनिधित्व के मामलों में विशेष रियायत दी गई। उन्हें केंद्रीय एवं प्रांतीय विधान परिषद में जनसंख्या के अनुपात में अधिक प्रतिनिधि भेजने का अधिकार दिया गया। इस अधिनियम के द्वारा, वायसराय की कार्यकारिणी में एक भारतीय सदस्य को नियुक्त करने की व्यवस्था की गई। पहले भारतीय सदस्य के रूप में सत्येंद्र प्रसाद सिन्हा को नियुक्त किया गया। इस अधिनियम के द्वारा, विधान परिषद के विचार-विमर्श के कृत्यों में भी वृद्धि हुई। इससे उन्हें यह अवसर दिया गया कि वे बजट या लोकहित के किसी विषय पर संकल्प प्रस्तावित करके प्रशासन की नीति पर प्रभाव डाल सकें। सशस्त्र बल, विदेश संबंध और देशी रियासतें जैसे कुछ विर्निदिष्ट विषय इसके बाहर रखे गए।

### *भारतीय परिषद अधिनियम, 1919 ( मांटेग्यू-चेम्सफोर्ड सुधार )*

भारत के तत्कालीन सेक्रेटरी ऑफ स्टेट ई.एस. मांटेग्यू और वायसराय लॉर्ड चेम्सफोर्ड को ब्रिटिश भारत में उत्तरदायी सरकार स्थापित करने की 20 अगस्त, 1917 की ब्रिटिश सरकार की घोषणा को कार्यरूप देने का कार्य सौंपा गया। सिफारिशों को इस अधिनियम के अन्तर्गत विधिक रूप प्रदान किया गया। इस अधिनियम द्वारा बनाए गए प्रावधानों के अनुसार–

- प्रांतीय सरकार में द्वैध-शासन प्रणाली का आरंभ किया गया। इस प्रणाली के जन्मदाता सर लियोनेल कर्टिस थे। इस प्रणाली के आधार पर प्रांतीय कार्यकारिणी परिषद को दो भागों में विभक्त किया गया। पहले भाग में गवर्नर तथा उसकी कार्यकारिणी के सदस्य तथा दूसरे भाग में गवर्नर तथा उसके मंत्रिगण थे।
- प्रांतीय विषयों को दो भागों में विभाजित किया गया-(अ) आरक्षित विषय तथा (ब) हस्तांतरित विषय। आरक्षित विषयों में सभी महत्वपूर्ण विषय, जैसे-कानून एवं व्यवस्था, वित्त, भू-राजस्व, सिंचाई, खनिज संसाधन, प्रशासन, उद्योग, कृषि तथा आबकारी इत्यादि सम्मिलित थे। आरक्षित विषयों का शासन गवर्नर अपनी कार्यकारी परिषद के परामर्श से तथा हस्तांतरित विषयों का विधान परिषद के प्रति उत्तरदायी भारतीय मंत्रियों के परामर्श से करता था। शासन की इस दोहरी व्यवस्था को द्वैध शासन व्यवस्था कहा गया। हालांकि यह व्यवस्था काफी हद तक असफल रही।
- प्रांतों में संवैधानिक तंत्र के विफल होने पर गवर्नर राज्य के प्रशासन एवं हस्तांतरित विषयों का दायित्व अपने ऊपर ले सकता था। भारत सचिव तथा वायसराय आवश्यकता पड़ने पर 'आरक्षित विषयों' में हस्तक्षेप कर सकते थे, किंतु 'हस्तांतरित विषयों' में उन्हें हस्तक्षेप करने की शक्ति नहीं थी।
- मंत्री, व्यवस्थापिका के प्रति उत्तरदायी थे तथा यदि व्यवस्थापिका उनके विरुद्ध अविश्वास प्रस्ताव पारित कर दे, तो उन्हें त्याग-पत्र देना पड़ता था, जबकि गवर्नर की कार्यकारी परिषद के सदस्य व्यवस्थापिका के प्रति उत्तरदायी नहीं थे।
- इस अधिनियम के द्वारा, प्रांतीय व्यवस्थापिका के सदस्यों की संख्या में बहुत वृद्धि कर दी गई। मताधिकार में भी वृद्धि कर दी गई तथा साम्प्रदायिक निर्वाचन पद्धति का अत्यधिक विस्तार कर दिया गया। अर्थात सांप्रदायिक आधार पर सिक्खों, भारतीय ईसाइयों, आंग्ल-भारतीयों और यूरोपियों के लिए पृथक निर्वाचन के सिद्धांत को विस्तारित कर दिया। साथ ही पहली बार महिलाओं को भी वोट देने का अधिकार प्रदान किया गया।
- प्रांतीय व्यवस्थापिका की सभाएँ किसी भी प्रस्ताव को प्रस्तुत कर सकती थीं, किंतु उसे पारित होने के लिये गवर्नर की सहमति आवश्यक थी। गवर्नर को प्रस्तावों को अस्वीकार करने तथा अध्यादेश जारी करने का अधिकार था। व्यवस्थापिका सभाओं के सदस्य बजट को अस्वीकार कर सकते थे, किंतु गवर्नर आवश्यक समझे तो सदस्यों की अनुमति के बिना भी उसे पास कर सकता था। प्रांतीय परिषद को इस अधिनियम के अन्तर्गत विधान परिषद की संज्ञा दी गई।
- इस अधिनियम के द्वारा, केंद्रीय सरकार की अनुत्तरदायी शासन की व्यवस्था यथावत बनी रही। वायसराय मुख्य कार्यपालिका अधिकारी था। वायसराय की कार्यकारिणी के 8 सदस्यों में से 3 भारतीय नियुक्त किए गए और उन्हें विधि, शिक्षा, श्रम, स्वास्थ्य तथा उद्योग विभाग सौंप दिए गए।
- व्यवस्थापिका के सदस्य प्रश्न पूछ सकते थे, अनुपूरक मांगें प्रस्तुत कर सकते थे, स्थगन प्रस्ताव ला सकते थे तथा बजट को अस्वीकार कर सकते थे, किंतु अभी भी बजट का 75 प्रतिशत हिस्सा सदस्यों की सहमति के बिना भी पारित किया जा सकता था।
- इस कानून से लंदन में भारत के उच्चायुक्त के कार्यालय का सृजन किया गया तथा भारत सचिव द्वारा किए जा रहे कुछ कार्यों को उच्चायुक्त को स्थानांतरित कर दिया गया। कुछ भारतीय सदस्यों को सरकार की स्थायी समितियों, जैसे- वित्त समिति अथवा लोक लेखा समिति में नियुक्त किया गया।
- एक लोक सेवा आयोग के गठन का प्रावधान किया गया। अत: 1926 में सिविल सेवकों की भर्ती के लिए केन्द्रीय लोक सेवा आयोग का गठन किया गया। इसने पहली बार केन्द्रीय बजट को राज्यों के बजट से अलग कर दिया और राज्य विधानसभाओं को अपना बजट स्वयं बनाने के लिए अधिकृत कर दिया।

### *भारत शासन अधिनियम, 1935*

भारत में संवैधानिक विकास की जो प्रक्रिया वर्ष 1861 से आरंभ हुई थी, उसका अंतिम चरण 1935 का 'भारत शासन अधिनियम' था। ब्रिटिश संसद द्वारा अगस्त, 1935 में इस अधिनियम के प्रावधानों के अनुसार, एक संघ बनाने का प्रस्ताव किया गया, जिसमें सभी ब्रिटिश भारतीय प्रांतों, मुख्य आयुक्त के प्रांतों सहित सभी भारतीय प्रांतों का सम्मिलित होना अनिवार्य था, किंतु देशी रियासतों का सम्मिलित होना वैकल्पिक था। इसके लिए दो शर्तें थीं-

- रियासत के प्रतिनिधियों में न्यूनतम आधे प्रतिनिधि चुनने वाली रियासतें संघ में सम्मिलित हों।
- रियासतों की कुल जनसंख्या में से आधी जनसंख्या वाली रियासतें संघ में सम्मिलित हों।

**नोट**- जिन शर्तों पर इन सभी रियासतों को संघ में सम्मिलित होना था, उनका उल्लेख एक पत्र में किया जाना था। चूँकि ऐसा नहीं हो सका, इसलिए यह संघ कभी अस्तित्व में नहीं आया तथा 1946 तक केंद्र सरकार, भारत शासन अधिनियम, 1919 के प्रावधानों के अनुसार ही चलती रही।

**साइमन आयोग या संवैधानिक आयोग**

इस आयोग का उद्गम 1919 के अधिनियम से माना जाता है। इस अधिनियम में यह उपबंध था कि अधिनियम के पारित होने के 10 वर्ष पश्चात एक संवैधानिक आयोग नियुक्त किया जाएगा। जो नए संविधान के अधीन भारत की दशा की जाँच करेगा एवं उस पर अपना प्रतिवेदन देगा। तदानुसार तत्कालीन ब्रिटिश प्रधानमंत्री बाल्डविन ने 8 नवम्बर, 1927 (निश्चित अवधि से 2 वर्ष पूर्व) को सर जॉन साइमन की अध्यक्षता में एक सात सदस्यीय संवैधानिक आयोग की नियुक्ति की, जिसने 1930 में अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की। इसमें आयोग द्वारा प्रांतों में प्रतिनिधि सरकार की सिफारिश तो की गई थी, लेकिन केंद्र में प्रतिनिधि सरकार की स्थापना को अनिश्चित काल हेतु स्थगित रखा गया था। रिपोर्ट में 1919 के अधिनियम द्वारा स्थापित द्वैध शासन प्रणाली समाप्त करने की संस्तुति की गई थी। आयोग में एक अध्यक्ष को मिलाकर 7 सदस्य थे और वे सभी ब्रिटिश थे। भारतीयों को इस बात से चोट पहुँची कि भारत की दशा की जाँच करने के लिए बने आयोग में एक भी भारतीय सदस्य नहीं है इसी कारण चारों तरफ इसका विरोध हुआ।

इस अधिनियम में भी वायसराय समस्त संविधान का केन्द्र बिंदु था। प्रशासन के विषयों को दो भागों में विभक्त किया गया- आरक्षित एवं हस्तांतरित। आरक्षित विषयों में विदेशी मामले, रक्षा, जनजातीय क्षेत्र तथा धार्मिक मामले थे, जिनका प्रशासन वायसराय को कार्यकारी पार्षदों की सलाह पर करना था। कार्यकारी पार्षद, केंद्रीय व्यवस्थापिका के प्रति उत्तरदायी नहीं थे। हस्तांतरित विषयों में वे सभी अन्य विषय सम्मिलित थे, जो आरक्षित विषयों में सम्मिलित नहीं थे। इन विषयों का प्रशासन, वायसराय को उन मंत्रियों की सलाह से करना था, जिनका निर्वाचन व्यवस्थापिका द्वारा किया गया था। ये मंत्री केंद्रीय व्यवस्थापिका के प्रति उत्तरदायी थे तथा अविश्वास प्रस्ताव पारित होने पर उन्हें त्याग-पत्र देना अनिवार्य था।

देश की वित्तीय स्थिरता, भारतीय साख की रक्षा, भारत या उसके किसी भाग में शांति की रक्षा, अल्पसंख्यकों, सरकारी सेवकों तथा उनके आश्रितों की रक्षा,

अंग्रेजी तथा बर्मी वस्तुओं के विरुद्ध किसी भेदभाव से उसकी रक्षा, भारतीय राजाओं के हितों एवं सम्मान की रक्षा तथा अपने निजी विवेकाधीन शक्तियों की रक्षा इत्यादि के संबंध में वायसराय को व्यक्तिगत निर्णय लेने का अधिकार था।
संघीय विधान मंडल (व्यवस्थापिका) द्विसदनीय थी, जिसमें राज्य परिषद (उच्च सदन) तथा संघीय सभा (निम्न सदन) थी। राज्य परिषद एक स्थायी सदन था, जिसके एक-तिहाई सदस्य प्रत्येक 3 वर्ष के पश्चात चुने जाने थे। इसकी अधिकतम सदस्य संख्या 260 होनी थी, जिसमें से 156 प्रांतों के चुने हुए प्रतिनिधि और अधिकतम 104 रियासतों के प्रतिनिधि होने थे, जिन्हें सम्बद्ध राजाओं को मनोनीत करना था। संघीय सभा का कार्यकाल पाँच वर्ष होना था। इसके सदस्यों में से 250 प्रांतों के तथा अधिकाधिक 125 सदस्य रियासतों के होने थे। रियासतों के सदस्य सम्बद्ध राजाओं द्वारा मनोनीत किए जाने थे, जबकि ब्रिटिश प्रांतों के सदस्य प्रांतीय विधान परिषदों द्वारा चुने जाने थे।
इस अधिनियम के अंतर्गत, साधारण प्रचलन के विपरीत एक विचित्र व्यवस्था यह थी कि उच्च सदन के सदस्यों का चुनाव सीधे मतदाताओं द्वारा किया जाए तथा निम्न सदन, जो ज्यादा महत्वपूर्ण था, सदस्यों का चुनाव अप्रत्यक्ष तरीके से हो। इसी प्रकार राजाओं को उच्च सदन के 40 प्रतिशत तथा निम्न सदन के 33 प्रतिशत सदस्य मनोनीत करने थे।
इस अधिनियम के अंतर्गत किए अन्य महत्वपूर्ण प्रावधान निम्नलिखित थे–

- समस्त विषयों का बँटवारा तीन सूचियों में केंद्रीय सूची (59 विषय), राज्य सूची (54 विषय) तथा समवर्ती सूची (36 विषय) के रूप में किया गया। अवशिष्ट शक्तियां वायसराय को दी गईं।
- संघीय सभा के सदस्यों द्वारा मंत्रियों के विरुद्ध अविश्वास प्रस्ताव नहीं लाया जा सकता था।
- धर्म एवं जाति आधारित निर्वाचन व्यवस्था को आगे भी जारी रहने देने की व्यवस्था की गई।
- संघीय बजट का 75 प्रतिशत भाग ऐसा था, जिस पर विधानमंडल मताधिकार का प्रयोग नहीं कर सकता था।
- प्रांतों को स्वायत्तता प्रदान कर दी गई।
- प्रांतों को स्वायत्तता एवं पृथक विधिक पहचान बनाने का अधिकार दिया गया।
- प्रांतों को भारत सचिव एवं वायसराय के 'आलाकमान वाले आदेशों' से मुक्त कर दिया गया, इस प्रकार वे प्रत्यक्ष अथवा सीधे तौर पर ब्रिटिश क्राउन के अधीन आ गए।
- प्रांतों को स्वतंत्र आर्थिक शक्तियाँ एवं संसाधन दिए गए। प्रांतीय सरकारें अपनी स्वयं की साख पर धन उधार ले सकती थीं।
- गवर्नर प्रांत में ताज का मनोनीत प्रतिनिधि होता था, जो महामहिम ताज (Crown) की ओर से समस्त कार्यों का संचालन एवं नियंत्रण करता था। इसके अलावा केंद्र में द्वैध शासन, सांप्रदायिक प्रतिनिधित्व व्यवस्था का विस्तार दलित जातियों, महिलाओं, मजदूरों तक किया गया। मताधिकार का विस्तार संघीय न्यायालय की स्थापना इत्यादि का प्रावधान किया गया।

### *एटली की घोषणा (20 फरवरी, 1947)*

20 फरवरी, 1947 को ब्रिटेन के प्रधानमंत्री क्लीमेंट एटली द्वारा की गई घोषणा में कहा गया कि, ब्रिटिश सरकार 30 जून, 1948 तक भारतवासियों को सत्ता सौंप देगी। यदि इस तिथि तक संविधान नहीं बन सका तो उस स्थिति में ब्रिटिश सम्राट की सरकार यह विचार करेगी कि निश्चित तिथि को ब्रिटिश शासित भारत की केंद्रीय सरकार की सत्ता किसको सौंपी जाए। क्या ब्रिटिश भारत की केंद्रीय सरकार के किसी रूप को अथवा कुछ भागों में वर्तमान प्रांतीय सरकारों को अथवा किसी अन्य ढंग से जो सर्वाधिक न्यायसंगत एवं भारतीयों के सर्वाधिक हित में हो, सत्ता दी जाए? इस सत्ता हस्तांतरण की प्रक्रिया को वास्तविक रूप देने के लिए लॉर्ड वेवेल के स्थान पर लॉर्ड माउंटबेटन को भारत का नया वायसराय नियुक्त किया गया।

### *अंतरिम सरकार का गठन*

24 अगस्त, 1946 को अंतरिम राष्ट्रीय सरकार के गठन की घोषणा की गई। इसमें पंडित जवाहर लाल नेहरू, सरदार वल्लभभाई पटेल, डॉ. राजेन्द्र प्रसाद, आसफ अली, शरतचंद्र बोस, डॉ. जॉन मथाई, सर शफात अहमद खाँ, जगजीवन राम, सरदार बलदेव सिंह, सैयद अली जहीर, सी. राजगोपालाचारी और डॉ. सी. एच. भाभा शामिल किए गए।
जवाहर लाल नेहरू के नेतृत्व में उनके 11 सहयोगियों के साथ 2 दिसम्बर, 1946 को अंतरिम सरकार का गठन किया गया। इसमें मुस्लिम लीग के सदस्य शामिल नहीं हुए हालांकि उनके शामिल होने के लिए विकल्प खुला रखा गया था। अंततः 26 अक्टूबर, 1946 को जब सरकार का पुनर्गठन किया गया, तब मुस्लिम लीग के पाँच प्रतिनिधियों को शामिल करके आंरभ में लिए गए तीन सदस्यों- सैयद अली जहीर, शरतचंद्र बोस और सर शफात अहमद खाँ को परिषद से बाहर कर दिया गया।
अंतरिम सरकार में शामिल होने के बावजूद भी मुस्लिम लीग ने 'संविधान सभा' में शामिल होने से इंकार कर दिया। मुस्लिम लीग की अनुपस्थिति में ही 11 दिसम्बर, 1946 को डॉ. राजेन्द्र प्रसाद की अध्यक्षता में संविधान सभा का गठन कर दिया गया। मुस्लिम लीग ने इस संविधान सभा का विरोध किया और अलग पाकिस्तान की मांग को और प्रखर रूप में रखा।
राजनीतिक गतिरोध को दूर करने के लिए ब्रिटिश प्रधानमंत्री एटली ने 20 फरवरी, 1947 को एक ऐतिहासिक घोषणा करते हुए कहा कि, भारतीय राजनैतिक दलों के आपसी मतभेद, संविधान सभा के कार्य में योजनाबद्ध तरीके से बाधा डालते हैं। इस राजनैतिक अनिश्चितता को देखते हुए 30 जून, 1948 तक राजसत्ता भारत के जिम्मेदार लोगों को सौंप दी जाएगी।

### *माउंटबेटन योजना*

देश में सांप्रदायिक हिंसा और गृह युद्ध की स्थिति की तीव्रता को देखते हुए 3 जून, 1947 को भारत के तत्कालीन वायसराय लॉर्ड लुई माउंटबेटन की अध्यक्षता में भारत और पाकिस्तान के बीच बंटवारे के प्रश्न पर कांग्रेस और मुस्लिम लीग के नेताओं के साथ एक योजना तैयार की गई, जिसे 'माउंटबेटन योजना' के नाम से जाना जाता है। इस योजना के अंतर्गत हस्तांतरण प्रक्रिया को सुगम बनाने तथा दोनों मुख्य सम्प्रदायों का समायोजन करने के लिए देश को दो भागों भारत और पाकिस्तान, में विभाजित करने का परामर्श दिया गया।
योजना की मुख्य बातें इस प्रकार हैं- बंगाल और पंजाब की प्रांतीय विधानसभाओं को कहा जाए कि वे दो भागों में विभाजित हों। एक भाग में मुस्लिम बहुमत वाले जिलों के प्रतिनिधि होंगे और दूसरे भाग में शेष प्रांत के होंगे। दोनों भागों के सदस्य पृथक रूप से बैठकर इस बात के लिए मतदान देंगे कि क्या उस प्रांत का विभाजन किया जाए? यदि दोनों में साधारण बहुमत से विभाजन के पक्ष में निर्णय होता है तो प्रत्येक विधानसभा का वह भाग उन क्षेत्रों के बारे में, जिनका वह प्रतिनिधित्व करता है, निर्णय करेगा कि क्या वह विद्यमान संविधान सभा में सम्मिलित होगा या पृथक संविधान सभा में?
उपर्युक्त योजना के अनुसार, दोनों प्रांतों (पश्चिम पंजाब और पूर्वी बंगाल) के मुस्लिम बहुमत वाले क्षेत्रों के प्रतिनिधियों ने विभाजन और नए पाकिस्तान में शामिल होने के पक्ष में मतदान किया। पश्चिमी-सीमांत प्रांत और सिलहट में जनमत पाकिस्तान के पक्ष में गया। 26 जुलाई, 1947 को माउंटबेटन ने पाकिस्तान के लिए अलग संविधान सभा की स्थापना की घोषणा की।

### *भारतीय स्वतंत्रता अधिनियम, 1947*

माउंटबेटन की 3 जून, 1947 की योजना पर दोनों समुदायों द्वारा सहमति प्रदान करने के उपरांत ब्रिटिश संसद ने उक्त योजना के आधार पर भारतीय स्वतंत्रता विधेयक का प्रारूप तैयार किया और इस विधेयक को ब्रिटिश संसद द्वारा बहुमत से पारित करके भारतीय स्वतंत्रता अधिनियम, 1947 के नाम से स्थापित किया गया। 18 जुलाई, 1947 को इस अधिनियम पर सम्राट द्वारा स्वीकृति प्रदान की गई।

माउंटबेटन योजना के आधार पर, ब्रिटिश संसद द्वारा पारित किए गए भारतीय स्वतंत्रता अधिनियम, 1947 के प्रावधानों के अनुसार, ब्रिटिश संसद की भारत पर प्रभुसत्ता समाप्त हो गई और डोमिनियन व्यवस्थापिकाएँ प्रभुता संपन्न बन गईं। वायसराय तथा प्रांतीय गवर्नर संवैधानिक प्रमुख बन गए और ब्रिटिश सम्राट की देशी राज्यों पर सर्वोच्च सत्ता की समाप्ति के साथ ही उनके भारत के सम्राट की उपाधि समाप्त हो गई। 15 अगस्त, 1947 को ब्रिटिश भारत का विभाजन कर, भारत और पाकिस्तान नामक दो स्वतंत्र व प्रभुत्व संपन्न राज्यों के निर्माण का प्रावधान किया गया। इस अधिनियम के प्रावधानों द्वारा की गई प्रमुख व्यवस्थायें निम्नलिखित थीं–

इस अधिनियम में यह उपबंध किया गया कि–

- 15 अगस्त, 1947 से दो स्वतंत्र डोमिनियन स्थापित किए जाएंगे। जो भारत और पाकिस्तान के नाम से जाने जाएंगे।
- बंगाल तथा पंजाब में दो-दो प्रांत बनाए जाने का प्रस्ताव किया गया।
- पाकिस्तान को मिलने वाले क्षेत्रों को छोड़कर ब्रिटिश भारत में सम्मिलित सभी प्रांत भारत में सम्मिलित माने गए।
- पूर्वी बंगाल, पश्चिमी पंजाब, सिंध और असम का सिलहट जिला पाकिस्तान में सम्मिलित होना था।
- भारत में ब्रिटिश क्राउन की सरकार का उत्तरदायित्व तथा भारतीय रियासतों पर ब्रिटिश क्राउन का अधिराजत्व 15 अगस्त, 1947 को समाप्त हो जाएगा।

इस प्रकार, भारतीय स्वतंत्रता अधिनियम, 1947 के अनुसार, 14 व 15 अगस्त को क्रमशः पाकिस्तान तथा भारत दो सम्प्रभु अधिराज्यों का गठन कर दिया गया।

## *संविधान सभा (Constituent Assembly)*

कैबिनेट मिशन योजना, 1946 के प्रस्तावों के अंतर्गत, भारत के संविधान निर्माण हेतु एक संविधान सभा गठित करने का प्रावधान किया गया। इसके अनुसार, संविधान सभा का निर्वाचन, प्रांतों की विधान सभाओं के सदस्य तथा प्रांतों की जनसंख्या के अनुपात के आधार पर आनुपातिक प्रतिनिधित्व प्रणाली के द्वारा किए जाने की व्यवस्था की गई। निर्वाचक मण्डल में केवल तीन वर्ग सम्मिलित किए गए, जो मुस्लिम, सिक्ख व अन्य जिसमें हिन्दू भी सम्मिलित थे, के रूप में वर्गीकृत थे। प्रस्तावित संविधान सभा में 389 सदस्य होने थे, जिसमें से 292 सदस्य भारतीय प्रांतों से, 4 मुख्य आयुक्तों के राज्यों से तथा 93 देशी रियासतों से चुने जाने थे।

जुलाई, 1946 में संविधान सभा के गठन हेतु प्रांतीय व्यवस्थापिकाओं में चुनाव हुए और इस चुनाव में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस को 208, मुस्लिम लीग को 73 तथा छोटे समूह व स्वतंत्र सदस्यों को 15 सीटें मिलीं, हालांकि देशी रियासतों को आवंटित सीट नहीं भर पाई, क्योंकि उन्होंने स्वयं को संविधान सभा से अलग रखा।

यद्यपि संविधान सभा का चुनाव मतदान द्वारा प्रत्यक्ष रूप से नहीं हुआ, तब भी प्रत्येक समुदाय के प्रतिनिधियों को इसमें जगह मिली तथा इसमें महिलाएं भी शामिल थीं। महात्मा गांधी तथा मोहम्मद अली जिन्ना इस सभा का हिस्सा नहीं थे।

### *संविधान सभा की कार्यवाही*

9 दिसंबर, 1946 को भारत की संविधान सभा की प्रथम बैठक हुई। मुस्लिम लीग के बहिष्कार तथा देशी रियासतों के इसमें शामिल न होने के कारण बैठक में सिर्फ 211 सदस्यों की भागीदारी रहीं। सभा के सबसे वरिष्ठ सदस्य डॉ. सच्चिदानंद सिन्हा को सभा का अस्थायी अध्यक्ष बनाया गया। 11 दिसंबर 1946 को डॉ. राजेन्द्र प्रसाद को सभा का स्थायी अध्यक्ष बनाया गया।

### *उद्देश्य प्रस्ताव*

13 दिसंबर, 1946 को पंडित जवाहर लाल नेहरू ने 'उद्देश्य प्रस्ताव' सभा में प्रस्तुत किया, जो 22 जनवरी, 1947 को संविधान सभा द्वारा स्वीकृत किया गया। उद्देश्य प्रस्ताव की मुख्य बातें निम्नलिखित हैं–

- भारत को एक स्वतंत्र तथा संप्रभु गणराज्य के रूप में स्थापित किया जाएगा।
- भारत की संप्रभुता का स्रोत भारत की जनता होगी।
- ब्रिटिश भारत में शामिल सभी क्षेत्र तथा वे अन्य क्षेत्र जो इसमें शामिल होना चाहेंगे, भारतीय संघ का हिस्सा होंगे, उनको अवशिष्ट शक्तियाँ प्राप्त होंगी।
- इस गणराज्य में भारत के समस्त नागरिकों को राजनीतिक, आर्थिक तथा सामाजिक समानता प्राप्त होगी।
- भारत के समस्त नागरिकों को विचार व अभिव्यक्ति, संस्था बनाने, कोई व्यवसाय करने, किसी भी धर्म को मानने या न मानने की स्वतंत्रता होगी।
- अल्पसंख्यकों, अनुसूचित जातियों व जनजातियों तथा पिछड़े वर्गों के हितों की सुरक्षा के लिए उपयुक्त रक्षोपाय किए जाएंगे।
- देश की एकता को स्थायित्व प्रदान किया जाएगा।
- भारत की प्राचीन सभ्यता को उसका उचित स्थान व अधिकार दिलाया जाएगा तथा विश्व शांति व मानव कल्याण में उसका योगदान सुनिश्चित किया जाएगा।

यही उद्देश्य प्रस्ताव संविधान की 'प्रस्तावना' का आधार बना और इसी ने संपूर्ण संविधान के दर्शन को मूर्त रूप प्रदान किया।

### *स्वतंत्रता अधिनियम द्वारा परिवर्तन*

संविधान सभा की प्रथम बैठक में सिर्फ 211 सदस्यों ने भाग लिया, क्योंकि मुस्लिम लीग ने स्वतंत्र पाकिस्तान की माँग उठाते हुए इसका बहिष्कार कर दिया था, और दूसरे देशी रियासतों ने इसमें शामिल होने से पहले ही मना कर दिया था। जैसे-जैसे संविधान सभा की कार्यवाही आगे बढ़ी, देशी रियासतों के कई प्रतिनिधि इसका महत्व समझकर इसमें शामिल होने लगे। जब लॉर्ड माउंटबेटन ने 3 जून, 1947 को भारत के विभाजन की योजना प्रस्तुत कर दी तो उसके बाद देशी रियासतों के अधिकांश प्रतिनिधि संविधान सभा में शामिल हो गए। भारतीय हिस्से की मुस्लिम लीग के सदस्य भी संविधान सभा में शामिल हुए। संविधान सभा के सदस्यों की संख्या 299 हो गई।

अब संविधान सभा पूरी तरह संप्रभुता से युक्त थी, क्योंकि ब्रिटिश शासन इसकी शक्तियों को सीमित नहीं कर सकता था तथा वह अब ब्रिटिश संसद द्वारा भारत के लिए बने किसी भी कानून को खारिज कर सकती थी। संविधान सभा स्वतंत्र भारत की पहली विधायिका भी बन गई थी। अब इसे न सिर्फ स्वतंत्र भारत के लिए संविधान का निर्माण करना था बल्कि विधायिका के तौर पर नए कानूनों का निर्माण तथा उन्हें लागू करने की जिम्मेदारी भी निभानी थी।

### *अन्य कार्य*

संविधान सभा ने संविधान निर्माण और आम कानूनों को लागू करने के अलावा निम्न कार्य भी किए–

- इसने 22 जुलाई, 1947 को राष्ट्रीय ध्वज को अपनाया।
- मई, 1949 में इसने राष्ट्रमंडल में भारत की सदस्यता को औपचारिक तौर पर स्वीकृत किया।
- इसने 24 जनवरी, 1950 को 'जन-गण-मन' को राष्ट्रगान तथा 'वंदे मातरम' को राष्ट्रगीत के रूप में स्वीकार किया तथा डॉ. राजेन्द्र प्रसाद को भारत के पहले राष्ट्रपति के रूप में चुना।

## संविधान सभा की समितियाँ

संविधान सभा ने संविधान के निर्माण से संबंधित विभिन्न कार्यों को करने के लिए कई समितियों का गठन किया। इनमें से 8 बड़ी समितियाँ थीं तथा अन्य छोटी। इन समितियों तथा इनके अध्यक्षों के नाम इस प्रकार हैं-

### बड़ी समितियाँ

- संघ शक्ति समिति – जवाहरलाल नेहरू
- संघीय संविधान समिति – जवाहरलाल नेहरू
- प्रांतीय संविधान समिति – सरदार पटेल
- प्रारूप समिति – डॉ. बी. आर. अंबेडकर
- मौलिक अधिकारों, अल्पसंख्यकों एवं जनजातियों तथा बहिष्कृत क्षेत्रों के लिए सलाहकार समिति (परामर्शदाता समिति) – सरदार पटेल। इस समिति के अंतर्गत निम्नलिखित पाँच उप-समितियाँ थीं:
  - मौलिक अधिकार पर उप समिति – जे.बी. कृपलानी
  - अल्पसंख्यक उप-समिति – एच.सी.मुखर्जी
  - उत्तर-पूर्व सीमांत जनजातीय क्षेत्र असम को छोड़कर तथा आंशिक रूप से छोड़े गए क्षेत्र के लिए उप-समिति – गोपीनाथ बार्दोलोई।
  - छोड़े गए एवं आंशिक रूप से छोड़े गए क्षेत्रों (असम में सिंचित क्षेत्रों के अलावा) के लिए उप-समिति – ए.वी.ठक्कर।
  - उत्तर-पश्चिम फ्रंटियर जनजाति क्षेत्र उप-समिति।
- प्रक्रिया नियम समिति – डॉ. राजेंद्र प्रसाद।
- राज्यों के लिए समिति – जवाहरलाल नेहरू
- (राज्यों से समझौता करने वाली)
- संचालन समिति – डॉ. राजेंद्र प्रसाद

### छोटी समितियाँ

- वित्त एवं कर्मचारी (स्टाफ) समिति – डॉ. राजेंद्र प्रसाद
- प्रत्यायक (क्रेडेन्सियल समिति)– अल्लादि कृष्णास्वामी अय्यर
- सदन समिति– बी. पट्टाभिसीतारमैय्या
- कार्य संचालन समिति– डॉ. के. एम. मुंशी
- राष्ट्र ध्वज संबंधी तदर्थ समिति – डॉ. राजेंद्र प्रसाद
- संविधान सभा के कार्यों के लिए समिति– जी. वी. मावलंकर
- सर्वोच्च न्यायालय के लिए तदर्थ समिति – एस. वरदाचारी (जो कि सभा के सदस्य नहीं थे)
- मुख्य आयुक्तों के प्रांतों के लिए समिति – बी. पट्टाभिसीतारमैय्या
- संघीय संविधान के वित्तीय प्रावधान – नलिनी रंजन सरकार (जो कि संबंधी समिति सभा के सदस्य नहीं थे)।
- प्रारूप संविधान की जाँच के लिए – जवाहरलाल नेहरू विशेष समिति
- प्रेस दीर्घा समिति – ऊषा नाथ सेन
- नागरिकता पर तदर्थ समिति – एस. वरदाचारी (जो कि सभा के सदस्य नहीं थे)

### प्रारूप समिति

संविधान सभा की सभी समितियों में सबसे ज्यादा महत्वपूर्ण थी- प्रारूप समिति। इसका गठन 29 अगस्त, 1947 को हुआ था। यह वह समिति थी, जिसे नए संविधान का प्रारूप तैयार करने की जिम्मेदारी सौंपी गई थी। इसमें सात सदस्य थे, जिनके नाम इस प्रकार हैं-

1. डॉक्टर बी.आर. अंबेडकर (अध्यक्ष)।
2. एन. गोपालस्वामी आयंगर।
3. अल्लादी कृष्णस्वामी अय्यर।
4. डॉक्टर के.एम. मुंशी।
5. सैय्यद मोहम्मद सादुल्ला।
6. एन. माधव राव (इन्होंने बी.एल.मित्र की जगह ली, जिन्होंने स्वास्थ्य कारणों से त्याग-पत्र दे दिया था)।
7. टी.टी. कृष्णामचारी (इन्होंने सन् 1948 में डी.पी. खेतान की मृत्यु के बाद उनकी जगह ली)।

विभिन्न समितियों के प्रस्तावों पर विचार करने के बाद प्रारूप समिति ने भारत के संविधान का पहला प्रारूप तैयार किया। इसे फरवरी, 1948 में प्रकाशित किया गया। भारत के लोगों को इस प्रारूप पर चर्चा करने और संशोधनों का प्रस्ताव देने के लिए 8 माह का समय दिया गया। लोगों की शिकायतों, आलोचनाओं और सुझावों के परिप्रेक्ष्य में प्रारूप समिति ने दूसरा प्रारूप तैयार किया, जिसे अक्टूबर, 1948 में प्रकाशित किया गया।

प्रारूप समिति ने अपना प्रारूप तैयार करने में छह माह से भी कम का समय लिया। इस दौरान इसकी कुल 141 बैठकें हुईं।

### संविधान सभा के समक्ष चुनौतियाँ

भारतीय संविधान सभा जिस दायित्व का निर्वाह कर रही थी, उनकी पूर्ति करना अत्यंत कठिन और चुनौतीपूर्ण था। सबसे पहली चुनौती विभिन्न विचारधाराओं तथा हितों में समन्वय स्थापित करने की थी, क्योंकि संविधान सभा में विभिन्न विचारधाराएं, जैसे- उदारवाद, समाजवाद आदि के समर्थक मौजूद थे। इन सभी विचारधाराओं से विकास का उचित मार्ग चुनना था। पाकिस्तान निर्माण के बाद भारत में सांप्रदायिक मतभेद शुरू हुआ। साम्प्रदायिकता से जूझने के साथ ही अल्पसंख्यकों को राष्ट्र की मुख्य धारा से जोड़ना तथा विभिन्न रियासतों से मिलकर बने राष्ट्र की एकता और अखंडता की सुरक्षा करना भी अत्यंत चुनौतीपूर्ण था। संविधान सभा के लिए यह तय कर पाना भी अत्यंत कठिन था कि भारत में लोकतंत्र संसदीय हो या अध्यक्षात्मक तथा संविधान अपनी मूल प्रकृति में केन्द्रीकरण की स्थापना का प्रयास करे या विकेन्द्रीकरण का। इन सभी चुनौतियों का समाधान करने के लिए संविधान सभा ने मूलत: दो नीतियाँ अपनाईं- पहली, सर्वसम्मति से निर्णय तथा दूसरी, समायोजन का सिद्धांत जिसका अर्थ दो परस्पर विरोधी समझे जाने वाले सिद्धांतों के बीच समन्वय स्थापित करना था।

## भारतीय संविधान की विशेषताएँ (Features of Indian Constitution)

विश्व के विभिन्न देशों के संविधानों एवं न्यायिक निर्णयों तथा संवैधानिक विशेषज्ञों के विचारों से प्रभावित 'भारत का संविधान' विश्व का सर्वाधिक व्यापक संविधान है। तब भी, यह विदेशी संविधानों का अनुकरण मात्र न होकर अपने आप में एक सर्वथा अनुपम और नूतन प्रयोग है, क्योंकि संविधान निर्माताओं ने अपने राष्ट्र की आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर सिर्फ वही तत्व अपनाए, जो भारत के लिए उपयोगी थे तथा उनमें आवश्यकतानुसार परिवर्तन भी किए।

**संविधान की मुख्य विशेषताएँ निम्नलिखित हैं –**

### लिखित और विशाल संविधान

भारत का संविधान एक 'लिखित' तथा 'विशाल/लंबा' संविधान है, जिसका निर्माण एक विशेष संविधान सभा द्वारा किया गया है। यह ब्रिटिश संविधान की तरह 'अलिखित' तथा 'विकसित' नहीं है। यह आकार की दृष्टि से विश्व के अन्य सभी संविधानों से विशाल भी है। इसके मौलिक संस्करण में 395 अनुच्छेद, 22 भाग और 8 अनुसूचियाँ थीं, किन्तु कई संशोधनों के बाद वर्तमान में इसमें 470 अनुच्छेद, 25 भाग और 12 अनुसूचियाँ हैं। ध्यातव्य है कि, भारतीय

संविधान में सूची की दृष्टि से अभी भी 395 अनुच्छेद ही हैं, क्योंकि संशोधनों के माध्यम से जो भी अनुच्छेद इसमें जोड़े गए हैं, वे किसी न किसी अनुच्छेद के विस्तार के रूप में जोड़े गए हैं, जैसे- अनुच्छेद 21(क), 51(क), अनुच्छेद 300 (क) इत्यादि। ऐसा इसलिए किया गया है, ताकि अनुच्छेदों का मूल क्रम न बदले और उन्हें पढ़ने में बार-बार बाधाएँ पैदा न हों।

**भारतीय संविधान के अत्यंत विशाल होने के पीछे कई महत्वपूर्ण कारण हैं, जैसे-**

- भारतीय संविधान निर्माताओं ने विश्व के लगभग 60 देशों के संविधानों का अध्ययन किया था और उनके उपयुक्त प्रावधानों को स्वीकार किया था। अमेरिका, ब्रिटेन, आयरलैंड और जर्मनी के संविधानों का प्रभाव विशेष रूप से स्वीकार किया गया। इससे संविधान का लंबा होना स्वाभाविक ही था।
- भारतीय संविधान में अमेरिकी संविधान की तरह सिर्फ संघ से संबंधित प्रावधान नहीं हैं, बल्कि विभिन्न प्रांतों से जुड़े प्रावधान भी शामिल हैं। विभिन्न राज्यों से संबंधित विशेष प्रावधान लिखे जाने से भी संविधान लंबा हो गया।
- चूँकि भारत में धार्मिक, क्षेत्रीय और भाषायी विविधता बहुत ज्यादा है तथा मुख्यधारा से कटे हुए बहुत से लोग अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों में शामिल हैं, इसलिए संविधान निर्माता उन सभी को मुख्यधारा में लाने वाले प्रावधान करना चाहते थे।
- भारतीय संविधान में सिर्फ मूल सिद्धांतों का वर्णन नहीं किया गया है, बल्कि विस्तृत रूप से प्रशासनिक ढांचे से जुड़े प्रावधान भी प्रस्तुत किए गए हैं।
- चूंकि संविधान निर्माण के समय राष्ट्रीय एकता और अखंडता से जुड़ी बहुत-सी समस्याएँ संभावित थीं, इसलिए संविधान निर्माताओं ने विशेष रूप से आपातकालीन प्रावधानों को भी शामिल किया।
- मूल अधिकारों के विस्तृत वर्णन के साथ-साथ विशिष्ट परिस्थितियों में उन पर लागू होने वाले युक्ति-युक्त प्रतिबंधों या निर्बंधनों को भी संविधान सभा ने अपनी दूर-दृष्टि का परिचय देते हुए संविधान में शामिल किया। इतना ही नहीं, उन्होंने राज्य के नीति निदेशक तत्वों को भी शामिल किया, जिससे संविधान लंबा हो गया।
- संविधान में उस समय की तात्कालिक समस्याओं को देखते हुए कुछ अस्थायी प्रावधान भी किए गए थे, जो भाग-21 के अंतर्गत, अनुच्छेद 369 से 392 तक विस्तृत थे। आगे चलकर, इनमें से कई प्रावधान हटा दिए गए। संविधान के लंबे होने का एक कारण ये अस्थायी प्रावधान भी थे।

### *संविधान की सर्वोच्चता*

संविधान द्वारा भारत में संवैधानिक सर्वोच्चता स्थापित की गई है। इसका अर्थ है कि, संविधान देश का सर्वोच्च कानून है। कोई भी कानून या आदेश संविधान के विरुद्ध जारी नहीं किया जा सकता। सरकार के सभी अंगों को संविधान द्वारा निर्दिष्ट सीमाओं के अधीन रहकर ही कार्य करना पड़ता है। यदि विधायिका द्वारा निर्मित कोई कानून या राष्ट्रपति द्वारा जारी कोई अध्यादेश संविधान के 'आधारभूत ढाँचे' के विरुद्ध हो, तो न्यायपालिका उसे अवैध घोषित कर सकती है। ये सारे लक्षण 'विधि के शासन' की स्थापना करते हैं।

### *कठोरता व लचीलेपन का समन्वय*

भारत का संविधान 'कठोर' या 'अनम्य' तथा 'लचीले' या 'सुनम्य' संविधानों का समन्वित रूप है। लचीला या सुनम्य संविधान वह होता है, जिसके प्रावधानों को सरल प्रक्रिया द्वारा संशोधित किया जा सकता है। इसके विपरीत, कठोर या अनम्य संविधान में संवैधानिक संशोधन के लिए अत्यंत जटिल प्रक्रिया को अपनाया जाता है, जिसके परिणामस्वरूप संविधान में संशोधन लगभग असंभव हो जाता है। भारत में संविधान के अधिकांश उपबंधों को संशोधित करने के लिए संसद के सदस्यों के बहुमत के अतिरिक्त उपस्थित सदस्यों के दो-तिहाई बहुमत की भी आवश्यकता होती है और कुछ उपबंधों, जैसे-राष्ट्रपति के चुनाव, उच्चतम न्यायालय से संबंधित विषयों तथा अनुच्छेद में संशोधन के लिए, इसके अलावा कम से कम आधे राज्यों के विधानमंडलों की स्वीकृति भी आवश्यक होती है। इसके बावजूद, इसमें बहुत से विषय ऐसे भी हैं, जिन्हें भारतीय संसद साधारण बहुमत द्वारा संशोधित कर सकती है। उदाहरण के लिए, राज्यों में विधान परिषदों के निर्माण तथा केन्द्रशासित प्रदेशों के विधानमंडलों से संबंधित प्रावधान इसी वर्ग में शामिल हैं। इस तरह भारत में संवैधानिक संशोधन की कठिन व सरल दोनों प्रकार की प्रक्रियाओं को अपनाया गया है। यह अमेरिका के अनम्य या कठोर संविधान तथा ब्रिटेन के सुनम्य या लचीले संविधान के बीच का रास्ता अपनाता है।

### *संघात्मक व्यवस्था, किन्तु एकात्मकता की ओर झुकाव*

यूं तो भारतीय संविधान का अनुच्छेद 1 भारत को एक एकात्मक राज्य घोषित करता है, किन्तु तत्वत: भारतीय संविधान संघवाद के मूल्यों को लेकर चला है। भारत में संघात्मक प्रणाली के तीनों प्रमुख लक्षणों को अपनाया गया है- (क) लिखित संविधान, (ख) सर्वोच्च व स्वतंत्र न्यायपालिका, तथा (ग) केंद्र एवं इकाइयों के बीच शक्तियों का स्पष्ट विभाजन। किन्तु, भारत में केंद्र-राज्य संबंधों का निरूपण कुछ इस प्रकार किया गया है कि केंद्र का पलड़ा व्यवहारत: काफी भारी हो गया। राज्यपालों की नियुक्ति, आपातकाल संबंधी प्रावधानों, समवर्ती सूची का प्रभावी होना, वित्तीय प्रणाली पर केन्द्र के हावी होने जैसे लक्षणों के आधार पर केन्द्र को अधिक ताकतवर समझा जा सकता है।

### *संसदीय व्यवस्था*

संसदीय व्यवस्था की स्थापना भारतीय संविधान की एक प्रमुख विशेषता है। यह विशेषता इंग्लैंड के संविधान से ली गई है, क्योंकि स्वाधीनता प्राप्ति से पहले भारतीय समाज इसका अभ्यस्त हो चुका था। 1935 के भारत सरकार अधिनियम में यही प्रणाली लागू की गई थी। भारतीय संसद राष्ट्रपति, लोकसभा एवं राज्यसभा से मिलकर बनती है। भारत के राष्ट्रपति इंग्लैंड के 'सम्राट' की तरह राज्य का नाममात्र का अध्यक्ष है। हालांकि वह 'वंशानुगत' आधार पर नहीं, निर्वाचन के आधार पर अपना पद प्राप्त करता है। उसकी वास्तविक कार्यकारी शक्तियां मंत्रिपरिषद में निहित होती हैं। राष्ट्रपति अपनी शक्तियों का प्रयोग मंत्रिपरिषद के परामर्श से ही करता है। मंत्रिपरिषद और संसद में घनिष्ठ संबंध होता है। सभी मंत्री संसद के सदस्य होते हैं, जो अपनी नीतियों व कार्यों के लिए निम्न सदन अर्थात लोकसभा के प्रति उत्तरदायी होते हैं। लोकसभा अविश्वास प्रस्ताव पारित कर जब चाहे मंत्रिपरिषद को अपदस्थ कर सकती है। इसका अभिप्राय है कि, जब तक मंत्रिपरिषद को लोकसभा में सदस्यों के बहुमत का समर्थन प्राप्त रहता है, तब तक वह अपने पद पर बनी रहती है। लगभग ये सारी विशेषताएँ ब्रिटेन के संसदीय ढाँचे से प्रभावित होकर ग्रहण की गई हैं।

पिछले दो दशकों में भारत में यह विवाद कई बार उठा है कि संविधान निर्माताओं द्वारा संसदीय प्रणाली का चयन करना उचित था या नहीं? 1990 के दशक में जिस तरह से सरकारें बार-बार बनीं और गिरीं, उससे लगने लगा कि, अब या तो अध्यक्षीय प्रणाली को अपना लिया जाना चाहिए अन्यथा बहुदलीय प्रणाली के स्थान पर द्विदलीय प्रणाली को। किन्तु पिछले एक दशक में राजनीतिक अस्थिरता की समस्या भारतीय जनमानस की परिपक्वता से अपने आप सुलझ गई, क्योंकि जनसामान्य ने धीरे-धीरे गठबंधनीय ढाँचे को अपना लिया, जो देश की संघात्मक जरूरतों के अनुकूल भी था और अस्थिरता की समस्या का समाधान भी करता था।

### *स्वतंत्र न्यायपालिका*

भारतीय संविधान, एक स्वतंत्र न्यायपालिका की व्यवस्था करता है, जो कि संघात्मक शासन प्रणाली की स्थापना के लिए जरूरी भी होता है। यह विशेषता अमेरिकी संविधान में दिखाई पड़ती है। भारतीय संविधान में उन सभी बातों का उल्लेख किया गया है, जो स्वतंत्र एवं निष्पक्ष न्यायपालिका के लिए आवश्यक हैं। इसके लिए संविधान में कई विशेष व्यवस्थाएं की गई हैं, जैसे- सर्वोच्च न्यायालय और उच्च न्यायालयों के न्यायाधीशों की नियुक्ति राष्ट्रपति द्वारा किया जाना, न्यायाधीशों को पद की सुरक्षा प्राप्त होना, न्यायाधीशों के आचरण पर संसद और प्रांतीय विधायिकाओं द्वारा विचार न कर सकना आदि। पिछले 70 वर्षों में, भारतीय न्यायपालिका ने कई बार अपनी स्वतंत्रता एवं निष्पक्षता का परिचय देकर लोगों में अपने प्रति आस्था मजबूत की है। केशवानंद भारती बनाम केरल राज्य तथा शाहबानो जैसे मामलों में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णयों ने न्यायपालिका की स्वतंत्रता तथा सशक्तता का प्रमाण दिया है।

### *संसदीय प्रभुता और न्यायिक सर्वोच्चता में समन्वय*

भारतीय संविधान के अंतर्गत, ब्रिटेन की संसदीय सर्वोच्चता और अमेरिका की न्यायिक सर्वोच्चता की धारणाओं के बीच अद्‌भुत समन्वय स्थापित किया गया है। भारत में संसदीय व्यवस्था को अपनाकर संसदीय सर्वोच्चता को स्वीकार किया गया तथा संसद को नए विधान बनाने व संविधान के प्रावधानों को संशोधित करने का व्यापक अधिकार दिया गया है। किन्तु, इसके साथ ही संघात्मक प्रणाली के आदर्श के अनुरूप सर्वोच्च न्यायालय को संविधान की अंतिम व्याख्या करने तथा उन विधियों और आदेशों को अवैध घोषित करने का अधिकार दिया गया है, जो संविधान की मूल भावना के विरुद्ध हों।

### *प्रभुत्व-सम्पन्न राज्य*

भारतीय संविधान की प्रस्तावना भारत को एक प्रभुत्व-संपन्न राज्य घोषित करती है। इसका निहितार्थ यह है कि, भारत पर आंतरिक एवं बाह्य दृष्टि से किसी विदेशी सत्ता का नियंत्रण नहीं है। किसी भी विदेशी शक्ति को इसकी गृह व विदेश नीति में हस्तक्षेप करने का कोई अधिकार नहीं है और वह किसी भी अंतर्राष्ट्रीय समझौते अथवा संधि को मानने के लिए बाध्य नहीं है। ध्यातव्य है कि कुछ लोग भारत द्वारा 'राष्ट्रमंडल' की सदस्यता लिए जाने की आलोचना करते हैं और इसे संप्रभुता के विरुद्ध बताते हैं, किन्तु पंडित जवाहरलाल नेहरू ने राष्ट्रमंडल की सदस्यता लेते समय स्पष्ट तौर पर घोषित किया था कि, हम एक संप्रभु राष्ट्र की हैसियत से राष्ट्रमंडल के सदस्य बन रहे हैं। हम ब्रिटिश राजा को सांकेतिक तौर पर ही राष्ट्रमंडल का प्रमुख मानते हैं, किन्तु हमारे लिए उसका कोई वास्तविक महत्व नहीं है। यदि ब्रिटिश राजा भारत आता है, तो उसे हमारे राष्ट्रपति की तुलना में कोई प्रमुखता प्राप्त नहीं होगी।

### *लोकतांत्रिक गणराज्य*

संविधान की प्रस्तावना के अनुसार, भारत एक लोकतंत्रात्मक गणराज्य है। इसका निहितार्थ है कि, शासन की शक्ति किसी व्यक्ति या वर्ग-विशेष में निहित न होकर भारतीय जनता में निहित है और जनता निर्वाचन प्रक्रिया के माध्यम से स्वयं शासक वर्ग का चयन करती है। भारतीय राज्य का 'गणतंत्रात्मक' स्वरूप इससे स्पष्ट हो जाता है कि भारत राज्य का सर्वोच्च अधिकारी अर्थात राष्ट्रपति वंशानुगत राजा न होकर भारतीय जनता द्वारा अप्रत्यक्ष रूप से निर्वाचित होता है। ध्यातव्य है कि, ब्रिटेन आधुनिक लोकतंत्र का जनक होकर भी अभी तक 'गणतंत्र' नहीं बन सका है, क्योंकि वह 'सम्राट' को अभी भी 'वंशानुगत' आधार पर राज्य का अध्यक्ष मानता है, जबकि भारत नवोदित लोकतांत्रिक राष्ट्र होकर भी 'गणतंत्र' को स्वीकार करता है, जो कि उसकी राजनीतिक परिपक्वता का स्पष्ट प्रमाण है।

### *समाजवादी राज्य*

भारतीय संविधान की प्रस्तावना भारत को एक समाजवादी राज्य घोषित करती है। ध्यातव्य है कि, मूल संविधान की प्रस्तावना में यह शब्द (समाजवाद) नहीं था, इसे 42वें संशोधन द्वारा प्रस्तावना में जोड़ा गया है। प्रस्तावना में उल्लिखित 'समाजवादी राज्य' का तात्पर्य यह है कि, भारत द्वारा लोक कल्याणकारी नीतियों के माध्यम से 'आर्थिक न्याय' उपलब्ध कराने की कोशिश की जाएगी। ध्यातव्य है कि भारत में अपनी परिस्थितियों के अनुकूल समाजवाद को अपनाया गया है, जो गाँधीवादी विचारधारा और लोकतंत्र को भी साथ लेकर चलता है। यह भूतपूर्व सोवियत संघ, चीन तथा अन्य चिरपरिचित समाजवादी प्रणालियों से अलग है। मोटे तौर पर इसे 'लोकतांत्रिक समाजवाद' की श्रेणी में रखा जा सकता है।

### *पंथनिरपेक्ष राज्य*

भारत एक पंथनिरपेक्ष या धर्मनिरपेक्ष राज्य है। 42वें संशोधन द्वारा संशोधित भारतीय संविधान की प्रस्तावना भारत को एक 'पंथनिरपेक्ष' राज्य घोषित करती है। इसका निहितार्थ यह है कि, भारत का अपना कोई राजधर्म नहीं है और यह सभी पंथों व धर्मों का समान रूप से आदर करता है। ध्यातव्य है कि, भारतीय संविधान में पंथनिरपेक्षता के नकारात्मक नहीं, सकारात्मक रूप को अपनाया गया है। यही कारण है कि भारतीय राज्य सभी धर्मों को नकारने के स्थान पर सभी का आदर करता है तथा उनके विकास में सहायक भी होता है। संविधान के अनुच्छेद 25 से 28 भारतीय नागरिकों को विभिन्न प्रकार की धार्मिक स्वतंत्रताएँ प्रदान करते हैं, जो भारतीय राज्य के धर्मनिरपेक्ष स्वरूप का ठोस प्रमाण है।

### *एकल नागरिकता*

भारतीय संविधान, ब्रिटेन की तरह एकल नागरिकता के सिद्धांत को अपनाता है, अमेरिका की तरह दोहरी नागरिकता का सिद्धांत यहाँ नहीं अपनाया गया है। भारत में संघ एवं राज्य के सभी लोगों को एक ही नागरिकता प्रदान की गई है। ऐसा करने का मूल कारण यह था कि, भारतीय संविधान सभा राष्ट्रीय एकता और अखंडता को बनाए रखने की चुनौतियों को लेकर अत्यंत सजग थी। यही कारण है कि, भारत के किसी भी स्थान पर इसके अंतर्गत रहने वाले नागरिक सिर्फ 'भारतीय' कहलाते हैं, उनकी नागरिकता की पहचान 'राज्य' के आधार पर नहीं होती है।

### *मौलिक अधिकार*

अमेरिका एवं आयरलैंड के संविधानों की तरह भारतीय संविधान में भी नागरिकों को कुछ मौलिक अधिकार व नीति निदेशक तत्व प्रदान किए गए हैं। संविधान के भाग 3 में अनुच्छेद 14 से 32 तक नागरिकों के छः प्रकार के मौलिक अधिकारों का उल्लेख किया गया है। ये अधिकार हैं-

- समानता का अधिकार (अनुच्छेद 14 से 18)।
- स्वतंत्रता का अधिकार (अनुच्छेद 19 से 22)।
- शोषण के विरुद्ध अधिकार (अनुच्छेद 23 से 24)।
- धार्मिक स्वतंत्रता का अधिकार (अनुच्छेद 25 से 28)।
- सांस्कृतिक एवं शिक्षा संबंधी अधिकार (अनुच्छेद 29 से 30)।
- संवैधानिक उपचारों का अधिकार (अनुच्छेद 32)।

### *नीति निदेशक तत्व*

आयरलैंड के संविधान की तरह भारतीय संविधान के भाग 4 में अनुच्छेद 36 से 51 तक राज्य के नीति निदेशक तत्वों का उल्लेख किया गया है। अनुच्छेद 37 में कहा गया है कि, नीति निदेशक तत्वों को किसी न्यायालय द्वारा बाध्यकारी रूप से लागू नहीं कराया जा सकेगा। किंतु तब भी ये तत्व देश के शासन में मूलभूत

महत्व रखते हैं। वस्तुत: नीति निदेशक तत्वों के माध्यम से भारतीय राज्य के लोक कल्याणकारी स्वरूप को स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है।

### *कल्याणकारी राज्य की स्थापना*

भारतीय संविधान को यदि समग्र रूप में देखें तो स्पष्ट हो जाता है कि, इसका मुख्य उद्देश्य एक कल्याणकारी राज्य की स्थापना करना है। चाहे पंडित नेहरू द्वारा प्रस्तावित 'उद्देश्य प्रस्ताव' रहा हो या संविधान की 'प्रस्तावना' को देखा जाए, मौलिक अधिकार हों या राज्य के नीति निर्देशक तत्व, इन सभी में भारतीय राज्य के लोक कल्याणकारी स्वरूप पर बल दिया गया है।

समग्रत: यह कहा जा सकता है कि, भारतीय संविधान की विशेषताएँ अदभुत एवं अपने-आप में अनूठी हैं। यद्यपि इन विशेषताओं में से अधिकांश विश्व के अन्य संविधानों में भी देखने को मिल जाती हैं, पर उनका जो विशिष्ट संयोजन भारतीय संविधान में किया गया है, वह इसे अनूठा बनाता है।

## *भारतीय संविधान के विभिन्न स्रोत (Various Sources of Indian constitution)*

हमारे संविधान की आधारशिला रखने वाले संविधान निर्माताओं के समक्ष विश्व के समस्त ज्ञात संविधानों के परिचालन से संचित अनुभव था तथा उन संविधानों के परिचालन में आने वाली समस्याओं से वे परिचित थे। अत: दूसरे संविधानों से कुछ प्रावधानों को सम्मिलित करने के अतिरिक्त, इन संविधानों के परिचालन में अनुभव की गई कुछ समस्याओं के निराकरण के लिए अनेक प्रावधानों को भारतीय संविधान में सम्मिलित किया गया। यह एक प्रमुख कारण था कि, हमारा संविधान विश्व के समस्त लिखित संविधानों में सर्वाधिक दीर्घ तथा सर्वाधिक व्यापक (Comprehensive) बनाया गया। हमारे संविधान के प्रमुख स्रोत निम्नलिखित हैं–

- ***1935 का भारत शासन अधिनियम–*** भारतीय संविधान का लगभग दो तिहाई भाग 1935 के भारत शासन अधिनियम से लिया गया है। राजनीति की आधारभूत संरचना, केन्द्र-राज्य संबंधों को नियमित करने वाले प्रावधान, आपातकाल की घोषणा, संघीय पद्धति, संघीय न्यायपालिका की शक्ति तथा राज्यपाल के प्राधिकार का प्रावधान इत्यादि प्रमुख रूप से इसी अधिनियम से लिये गए हैं।
- ***अमेरिकी संविधान–*** राज्य की कार्यपालिका के प्रमुख तथा सशस्त्र सेनाओं के सर्वोच्च कमांडर के रूप में राष्ट्रपति के होने का प्रावधान, राज्यसभा के पदेन सभापति के रूप में उपराष्ट्रपति का प्रावधान, मौलिक अधिकारों पर अधिकार प्रपत्र (Bill of Rights) का प्रभाव, न्यायपालिका की स्वतन्त्रता, न्यायिक पुनर्विलोकन (Judicial Review), प्रस्तावना तथा सर्वोच्च न्यायालय व उच्च न्यायालयों के न्यायाधीशों का निष्कासन आदि व्यवस्थाएँ अमेरिकी संविधान से ली गई हैं।
- ***ब्रिटिश संविधान–*** विधि (Law) निर्माण की प्रक्रियाएँ, विधि का शासन (Rule of Law), एकल नागरिकता की पद्धति तथा मंत्रियों के उत्तरदायित्व वाली संसदीय प्रणाली की व्यवस्था ब्रिटिश संविधान से प्रेरित हैं।
- ***कनाडा का संविधान–*** कनाडा के संविधान से केन्द्र-राज्य संबंध विषयक प्रावधान, केन्द्र तथा राज्यों के बीच शक्तियों का वितरण, एक शक्तिशाली केन्द्र से युक्त संघ एवं केन्द्र में अवशिष्ट शक्तियों का विधान आदि तत्व लिया गया है।
- ***आयरलैंड का संविधान–*** आयरलैंड के संविधान से नीति निदेशक सिद्धांत, राष्ट्रपति के निर्वाचन की प्रक्रिया, राष्ट्रपति द्वारा राज्यसभा के सदस्यों को मनोनीत किया जाना आदि व्यवस्थाएँ ग्रहित की गई हैं।
- ***जर्मनी का वाइमर संविधान–*** आपातकाल में मौलिक अधिकारों के स्थगन से संबंधित प्रावधान जर्मनी के वाइमर संविधान से प्रेरित है।
- ***ऑस्ट्रेलिया का संविधान–*** ऑस्ट्रेलिया के संविधान से समवर्ती सूची, व्यापार, वाणिज्य तथा परस्पर सम्पर्क (Intercourse) से संबंधित प्रावधान, सहयोगात्मक संघात्मकता (Co-operative Federalism) तथा संसद के दोनों सदनों की संयुक्त बैठक द्वारा आदि तत्व लिये गए हैं।

| **भारतीय संविधान पर अन्य देशों के संविधानों का प्रभाव** |
|---|
| ***भारत शासन अधिनियम, 1935*** |
| संघीय व्यवस्था |
| राज्यपाल का कार्यालय |
| न्यायपालिका का ढाँचा |
| लोक सेवा आयोग |
| आपातकालीन उपबंध |
| शक्तियों के वितरण की तीन सूचियाँ |
| ***ब्रिटेन का संविधान*** |
| संसदीय व्यवस्था |
| राज्याध्यक्ष का प्रतीकात्मक या नाममात्र का महत्व |
| विधायी प्रक्रिया |
| एकल नागरिकता |
| मंत्रिमण्डल प्रणाली |
| परमाधिकार रिटें |
| संसदीय विशेषाधिकार |
| द्विसदनवाद |
| विधि द्वारा स्थापित प्रक्रिया |
| ***अमेरिका का संविधान*** |
| मूल अधिकार |
| न्यायपालिका की स्वतंत्रता |
| न्यायिक पुनरीक्षण या पुनरावलोकन का सिद्धांत |
| उपराष्ट्रपति का पद |
| उच्चतम न्यायालय और उच्च न्यायालयों के न्यायाधीशों को पद से हटाया जाना और राष्ट्रपति पर महाभियोग |
| यथोचित विधि प्रक्रिया |
| ***आयरलैंड का संविधान*** |
| राज्य के नीति निदेशक सिद्धांत |
| राष्ट्रपति की निर्वाचन पद्धति |
| राज्य सभा के लिए सदस्यों का नामांकन |
| ***कनाडा का संविधान*** |
| सशक्त केन्द्र के साथ संघीय व्यवस्था |
| अवशिष्ट शक्तियों का केन्द्र में निहित होना |
| केन्द्र द्वारा राज्य के राज्यपालों की नियुक्ति |
| उच्चतम न्यायालय का परामर्शी न्याय निर्णयन |
| ***ऑस्ट्रेलिया का संविधान*** |
| समवर्ती सूची |

| |
|---|
| व्यापार, वाणिज्य और समागम की स्वतंत्रता |
| संसद के दोनों सदनों की संयुक्त बैठक |
| ***जर्मनी का वाइमर संविधान*** |
| आपातकाल के समय मूल अधिकारों का स्थगन |
| ***सोवियत संघ ( भूतपूर्व ) का संविधान*** |
| मूल कर्तव्य और प्रस्तावना में सामाजिक/आर्थिक एवं राजनीतिक न्याय का आदर्श |
| ***फ्रांस का संविधान*** |
| गणतंत्रात्मक ढाँचा |
| प्रस्तावना में स्वतंत्रता, समता और बंधुता के आदर्श |
| ***दक्षिण अफ्रीका का संविधान*** |
| संविधान में संशोधन की प्रक्रिया |
| राज्य सभा के सदस्यों का निर्वाचन |

## *भारतीय संविधान का स्वरूप एवं भारत की स्थिति (Nature of Indian Constitution & Status of India)*

यद्यपि, संविधान सभा की प्रारूप समिति (Drafting Committee) के सदस्यों ने भारतीय संविधान को परिसंघात्मक (Federal) कहा है, जबकि स्वयं संविधान में इसका उल्लेख कहीं भी नहीं है, इसीलिए कुछ न्यायवेत्ता इसे विवाद का विषय मानते हैं।

**पाश्चात्य विद्वान प्राय:** अमेरिकी संविधान को परिसंघात्मक संविधान का आदर्श रूप मानते हैं और जो संविधान इसके अनुरूप नहीं हैं, उन्हें परिसंघात्मक संविधान के रूप में वे स्वीकार नहीं करते, परन्तु अब यह अधिकांशत: अनुभव किया जा रहा है कि इस प्रकार की अवधारणा दोषपूर्ण है और प्राय: यह स्वीकार किया जा रहा है कि कोई राज्य एकल (Unitary) है अथवा परिसंघात्मक (Federal) यह इस पर निर्भर करता है कि उसमें कितने अंशों में संघ की विशेषताएँ विद्यमान हैं। यदि भारतीय संविधान के प्रावधानों पर सूक्ष्म दृष्टि डाली जाए, तो यह स्पष्ट होता है कि, इसके द्वारा प्रतिपादित राजनीतिक व्यवस्था (Political System) में, परिसंघीय राजनीति (Federal Polity) की समस्त अनिवार्य विशेषताएँ हैं।

भारतीय संविधान एक ऐसे द्वैध राजनीतिक तन्त्र की स्थापना करता है, जिसके केन्द्र में संघ तथा परिधि में राज्य हैं तथा जिनकी शक्तियों का संविधान द्वारा स्पष्ट रूप से निर्धारण किया गया है। हमारा संविधान लिखित, कठोर व लचीलापन और सर्वोच्च है, जिसमें इसकी पर्याप्त शक्ति है कि वह संघ या राज्य की विधायिकाओं की शक्तियों से परे जाकर लागू किए जाने वाले कानूनों को अतिक्रमणकारी (Ultra Vires) घोषित कर दे, जो 1973 में केशवानन्द भारती बनाम केरल राज्य के वाद (Case) के निर्णय से दृढ़तापूर्वक स्थापित हो जाता है। इसके अतिरिक्त, केन्द्र या राज्यों की शक्तियों या दर्जे में किसी प्रकार का कोई परिवर्तन करने वाला संशोधन तब तक सम्भव नहीं है, जब तक इसमें राज्यों की प्रतिभागिता न हो ( अनुच्छेद 368)।

अन्तत: सर्वोच्च न्यायालय, भारतीय संविधान की व्याख्या तथा इसके साथ ही साथ केन्द्र-राज्य सम्बन्धों से जुड़े विवादों के निर्णय के लिए भी सर्वोच्च सत्ता (Apex Authority) है। यद्यपि भारतीय संविधान में परिसंघीय शासन की सभी पाँच अनिवार्य विशेषताएँ विद्यमान हैं, तथापि कुछ विशेष स्थितियों में संविधान राज्यों से सम्बन्धित विषयों में हस्तक्षेप करने के लिए केन्द्र को शक्ति प्रदान करता है। इससे राज्यों की स्थिति गौण (Subordinate) रूप में प्रकट होती है।

## *यूनियन (Union) , फेडरेशन (Federation) तथा कनफेडरेशन (Confederation) में अंतर*

यूनियन विनाशी राज्यों का अविनाशी संघ होता है। जिसमें केंद्रीय राज्य द्वारा प्रशासनिक और अन्य सुविधाओं की दृष्टि से संघ के अंदर इकाइयों की स्थापना की जाती है। इसमें इकाइयों का कोई निश्चित अस्तित्व नहीं रहता, जैसे- भारत।

वहीं फेडरेशन अविनाशी राज्यों (इकाइयों) का अविनाशी संघ होता है, इसमें दोनों अर्थात राज्यों और संघ का निश्चित अस्तित्व रहता है। इकाइयां और संघ आपसी समझौते द्वारा अपने संबंधों का निर्धारण करते हैं। इसमें राज्यों को संघ से पृथक होने का अधिकार नहीं होता है। जैसे- संयुक्त राज्य अमेरिका।

वहीं कनफेडरेशन में संघ का अस्तित्व राज्यों के बीच आपसी समझौते के परिणामस्वरूप और शक्तियां भी इसी से निर्धारित होती है। परंतु इसमें राज्यों को संघ से पृथक होने का अधिकार है, जैसे-पूर्व सोवियत संघ।

## *भारत की परिसंघीय प्रकृति को प्रभावित करने वाले संवैधानिक कारक*

अमेरिका व ऑस्ट्रेलिया में राज्यों का अपना-अपना पृथक संविधान होता है, जो संघ के संविधान के समान ही शक्तिशाली होता है, किन्तु भारत के राज्यों का कोई पृथक संविधान नहीं होता। पहले अनुच्छेद 370 के तहत जम्मू-कश्मीर में अलग संविधान का विधान था, लेकिन 5 अगस्त, 2019 से अनुच्छेद 370 के क्लॉज 2 और 3 के निष्कासन तथा जम्मू-कश्मीर के राज्य के दर्जे की समाप्ति और जम्मू-कश्मीर और लद्दाख के रूप में दो केंद्रशासित प्रदेश बनने से (31 अक्टूबर, 2019) अब पूरे देश में एक ही संविधान लागू होगा।

भारत समान तथा एकल नागरिकता (Uniform & Single Citizenship) के सिद्धान्त का पालन करता है, जबकि अमेरिका व ऑस्ट्रेलिया में द्वैध (दोहरी) नागरिकता (Double Citizenship) का प्रचलन है। वहाँ संघ के अतिरिक्त नागरिकों को राज्य की भी नागरिकता प्रदान की जाती है।

अमेरिका में संघीय सरकार के लिए किसी राज्य की क्षेत्रीय सीमा में एकतरफा परिवर्तन करना सम्भव नहीं है, परन्तु भारत में सम्बद्ध राज्य की सहमति के बिना भी संसद उसकी क्षेत्रीय सीमा परिवर्तित कर सकती है। अतएव, भारत में राज्यों को क्षेत्रीय अखण्डता (Territorial Integrity) का अधिकार नहीं है।

यदि अनुच्छेद 352 के अन्तर्गत, राष्ट्रपति समग्र भारत या उसके किसी क्षेत्र विशेष हेतु राष्ट्रीय आपात (National Emergency) की घोषणा करता है, तब संसद उन विषयों पर भी कानून बना सकती है, जो अन्य स्थिति में पूर्णत: राज्य सूची में है। संसद राज्यों को निर्देश दे सकती है कि वे अपने अधिकार क्षेत्र में आने वाले विषयों के सम्बन्ध में अपनी कार्यपालिका शक्तियों का प्रयोग किस रूप में करें? वित्तीय प्रावधानों को भी निलम्बित किया जा सकता है। अत: एक ही झटके में भारतीय संघ की प्रकृति एकल (Unitary) हो जाती है, परन्तु अन्य परिसंघीय संविधानों में ऐसी स्थिति संभव नहीं है।

भारतीय संविधान की सातवीं अनुसूची विधायन सम्बन्धी विषयों, जिन पर संसद या राज्य विधायिकाएँ कानून लागू कर सकती हैं, को तीन सूचियों में विभाजित करता है- संघ सूची (Union List), राज्य सूची (State List) तथा समवर्ती सूची (Concurrent List)। संघ सूची (Union List) में मूल रूप से 97 लेकिन वर्तमान में 100 विषय हैं, जिन पर केवल संसद का नियंत्रण है जबकि राज्य सूची (State List) में मूल रूप से 66 लेकिन वर्तमान में केवल 61 विषय हैं, जिन पर राज्य विधायिकाओं का नियंत्रण है। राज्य कर (State Tax) के एक मात्र विषय को छोड़कर सभी महत्वपूर्ण विषय संघ सूची (Union List) के अन्तर्गत हैं। संविधान के लागू होने के समय समवर्ती सूची में 47 विषय थे, वर्तमान समय में इसमें

52 विषय हैं, समवर्ती सूची (Concurrent List) के विषयों पर केन्द्र व राज्य के कानूनों में विरोध होने की स्थिति में राज्य को केन्द्र के समक्ष उस अंश तक पीछे हटना पड़ता है, कानूनों में जिस अंश तक विरोध है, उस अंश तक राज्य का कानून निरस्त कर दिया जाएगा।

भारतीय संविधान में, अवशिष्ट शक्तियाँ (Residuary Power) अर्थात उन विषयों पर कानून बनाने की शक्तियाँ, जो विषय किसी भी सूची के अन्तर्गत नहीं आते, केन्द्र में निहित है (कनाडा का संघीय प्रारूप), न कि राज्यों में। इसके विपरीत अमेरिका व ऑस्ट्रेलिया में अवशिष्ट शक्तियाँ राज्यों में निहित हैं।

संसद को संघ सूची (सातवीं अनुसूची) के विषयों पर कानून बनाने का एकमात्र अधिकार है, परन्तु राज्यों को राज्य सूची पर कानून बनाने का वैसा एकमात्र (Exclusive) अधिकार नहीं है। कुछ विशेष दशाओं व परिस्थितियों में राज्य सूची के विषयों पर भी संसद कानून बना सकती है। ऐसी कुल पाँच दशाएँ निम्नलिखित हैं–

- ***अनुच्छेद 249 के अनुसार***– यदि राज्य सभा राज्य के किसी विषय पर कानून बनाने के लिए संसद को, इस आधार पर कि यह राष्ट्रहित के लिए अनिवार्य है, अधिकृत (Authorise) करते हुए इस आशय का संकल्प (Resolution) न्यूनतम दो-तिहाई बहुमत से पारित कर देती है, तो संसद उन विषयों पर कानून बना सकती है। ऐसे कानून केवल 1 वर्ष के लिए लागू होंगे और उस अवधि को निरन्तर कितनी भी बार बढ़ाया जा सकेगा, परन्तु एक बार में 1 वर्ष से अधिक नहीं।
- ***अनुच्छेद 250 के अनुसार***– यदि राष्ट्रीय आपात (National Emergency) घोषित कर दिया जाता है, तो संसद को राज्य के सभी 61 विषयों के संबंध में कानून बनाने का अधिकार स्वत: प्राप्त हो जाता है अर्थात राज्य सूची (State List) को समवर्ती सूची (Concurent List) में परिवर्तित कर दिया जाता है।
- ***अनुच्छेद 252 के अनुसार***– यदि दो या दो से अधिक राज्यों की विधायिकाएँ राज्य के किसी विशेष विषय पर कानून बनाने के लिए संसद से अनुरोध करती हैं, तो संसद ऐसा कर सकती है, परन्तु संसद ऐसे कानूनों को संशोधित या निरसित भी (Repeal) कर सकती है।
- ***अनुच्छेद 253 के अनुसार***– अंतर्राष्ट्रीय समझौतों, जिसमें भारत एक पक्ष (Party) हो, का पालन करने के लिए संसद राज्य सूची के विषयों पर भी कानून बना सकती है। राज्य ऐसी पहल का विरोध नहीं कर सकते।
- ***अनुच्छेद 356 के अनुसार***– यदि राज्य में राष्ट्रपति शासन लगाया जाता है, तो राज्य विधायिका की शक्तियों का प्रयोग संसद के अधीन अथवा उसके अधिकार में होता है।
- ***अनुच्छेद 155 के अनुसार***– राज्यपाल की नियुक्ति राष्ट्रपति द्वारा की जाती है और राज्यपाल राज्य विधायिका के प्रति उत्तरदायी नहीं होता। अत: परोक्ष रूप से राज्यपाल की नियुक्ति के माध्यम से राज्य के ऊपर केन्द्र का नियंत्रण रहता है। इसी प्रकार, यदि अनुच्छेद 360 के अन्तर्गत, इस आधार पर कि भारत या उसकी किसी इकाई की वित्तीय स्थिरता या साख खतरे में है, राष्ट्रपति द्वारा वित्तीय आपात (Financial Emergency) लगाया जाता है, तो वित्तीय आपात की अवधि में राज्य विधायिका द्वारा पारित सभी धन विधेयकों (Money Bills) पर केन्द्र का नियंत्रण होता है।
- ***अनुच्छेद 256 के अनुसार***– केन्द्र, राज्यों को प्रशासनिक निर्देश दे सकता है, जो राज्यों पर बाध्यकारी (Binding) होता है। संविधान में इसके भी उपाय दिए गए हैं, जिसे अपनाकर केन्द्र ऐसे निर्देशों के क्रियान्वयन को सुनिश्चित कर सके।
- ***अनुच्छेद 312 के अनुसार***– भारतीय प्रशासनिक सेवा (IAS), भारतीय पुलिस सेवा (IPS) तथा भारतीय वन सेवा (IFS) इन अखिल भारतीय सेवाओं के पदाधिकारियों की नियुक्ति केन्द्र द्वारा की जाती है, किन्तु उनके वेतन का भुगतान व उनका नियंत्रण राज्य द्वारा किया जाता है, परन्तु किसी पदाधिकारी द्वारा की गई किन्हीं अनियमितताओं (Irregularities) की स्थिति में राज्य उन्हें निलम्बित करने के अतिरिक्त किसी भी अनुशासनात्मक कार्यवाही की पहल नहीं कर सकता।
- ***अनुच्छेद 217 के अंतर्गत***– सम्बद्ध राज्य के राज्यपाल से विचार-विमर्श (Consultation) के आधार पर राष्ट्रपति द्वारा उच्च न्यायालयों के न्यायाधीशों की नियुक्ति की जाती है और इसमें राज्यों की कोई भूमिका नहीं होती।
- ***अनुच्छेद 324 के अंतर्गत***– राज्य विधानसभा एवं संसद इन दोनों का निर्वाचन कराने के लिए एक केंद्रीकृत निर्वाचन तंत्र की स्थापना की गई है। इसी प्रकार अनुच्छेद 148 में, केन्द्र व राज्यों के आय-व्यय का लेखा-जोखा भारत का नियंत्रक व महालेखापरीक्षक (Comptroller & Auditor General of India) करता है, जिसकी नियुक्ति तथा पदमुक्ति राष्ट्रपति करता है।

इस प्रकार केन्द्र की ओर झुकाव वाले कुछ एक प्रावधानों को छोड़कर भारतीय संविधान मुख्यत: परिसंघात्मक प्रकृति का ही है।